जन-नायक

[भारत के राष्ट्रीय नेताओं, समाज-सुधारकों वैज्ञानिकों, दार्शनिकों, क्रांतिकारियों एवं महान् महिलाओं की जीवन-झाँकियों का संकलन]

लेखक

फतहचन्द्र शर्मा 'आराधक'

सह-सम्पादक

नवभारत टाइम्स, दिल्ली

भूमिका-लेखक

पत्रकार-प्रवर बनारसीदास चतुर्वेदी

संसद-सदस्य

नई दिल्ली

प्रकाशक

१६८२, नई सड़क, दिल्ली

सम्पादकाचार्य
पण्डित पद्मसिंह शर्मा को
सादर समर्पित

भूमिका

श्री फतहचन्द्र शर्मा 'आराधक' द्वारा लिखित 'जननायक' नामक पुस्तक को मैंने इधर-उधर से पढ़ा है और उसे केवल विद्यार्थियों के लिये ही नहीं, जनसाधारण के लिये भी अत्यन्त उपयोगी पाया है। उन्होंने अपनी पुस्तक को छः भागों में विभाजित किया है :—

१. राष्ट्र नेता
२. संत-सुधारक
३. महान् वैज्ञानिक
४. शिक्षा-शास्त्री
५. बलि-पथ के राही
६. महान् महिलाएं

पुस्तक को सर्वथा व्यापक दृष्टिकोण से लिखा गया है और किसी भी प्रकार की दलगत या साम्प्रदायिक भावना उसमें नहीं आने पाई है। राष्ट्रीय उन्नति में योग देने वाले सभी वर्गों के नेताओं के जीवन पर दृष्टि डाली गई है। पुस्तक की भाषा सरल और प्रवाहयुक्त है।

लेखक ने तिथि-तारीखों के चक्कर से तथा शब्दाडम्बर से पुस्तक को बचाया है और चरितनायकों के गुणों पर प्रकाश डालने का विशेष रूप से प्रयत्न किया है।

पुस्तक में वर्णित आदर्श महिलाओं के रेखाचित्र विशेष रूप से आकर्षक तथा उपदेशप्रद बन पड़े हैं।

निस्संदेह इस ग्रन्थ के पाठकों को इस बात का पता लग जायगा कि जननायकों को कितने संघर्ष के बीच से गुज़रना पड़ा है और वे अपने भावी पद के निर्माण में इसमें प्रेरणा पा सकेंगे।

२७-५-५८
६६, नार्थ ऐवेन्यू,
नई दिल्ली।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

आत्म-निवेदन

संसार में पुस्तकों का अनादिकाल से विशेष सम्बन्ध रहा है और वे सदा से ज्ञान का प्रकाश-स्तम्भ मानी जाती रही हैं। अनेक ऐसे उदाहरण आपको देखने अथवा सुनने को मिलेंगे जब पुस्तकों ने अनेक ऐसे उपयोगी मार्गों पर मनुष्य को चलने की प्रेरणा प्रदान की जब कि मानव अपने निश्चित मार्ग से भटक कर पतन के मार्ग में जाने को अग्रसर हो रहा था। इस प्रकार से पुस्तकों द्वारा हम प्राचीन काल से कुछ-न-कुछ सीखते आ रहे हैं। हमने भगवान् कृष्ण, भगवान् राम तथा महात्मा बुद्ध को अपनी आँखों से नहीं देखा किन्तु पुस्तकों में पढ़ा हुआ उनका उदार चरित्र आज भी हमें यह प्रेरणा प्रदान करता है कि हम अच्छे काम करें, बुरे कामों से बचें, क्योंकि बुरे कामों का परिणाम सदैव हानिप्रद होता है।

मनुष्य में स्वभाव से यह प्रवृत्ति रही है कि जो उसके पूर्वज काम कर गए हैं उनकी ओर वह स्वयं चलना चाहता है जिनकी कहानी वह अपने बचपन में सुन चुका है और जिनके चरित्र पुस्तकों से पढ़ कर वह यह भली प्रकार जान सका है कि किस महापुरुष ने कैसे-कैसे संकटों में हमारे लिए अच्छे मार्ग को बनाया यद्यपि उनके मार्ग में भारी कठिनाइयाँ आईं किन्तु उन्होंने कष्ट सह कर भी उनसे मुंह नहीं मोड़ा। इस प्रकार महापुरुषों की जीवन-कथाएँ पढ़ने पर जहाँ सुखपूर्ण आनन्द की अनुभूति होती है वहाँ हृदय में अपूर्व उत्साह और प्रेरणा मिलती है कि हमारे महापुरुषों ने हमारी जीवन-धारा को बनाने के लिए कितना भारी उप-

कार किया । हज़ारों युवक उन महापुरुषों की प्रेरणा से राष्ट्र का निर्माण करने में सफल हो सके हैं ।

प्रस्तुत पुस्तक इसी दिशा में एक विनम्र प्रयास है । इसका लक्ष्य केवल यही है कि राष्ट्रीय नेताओं, समाज-सुधारकों और हुतात्माओं ने भारतीय जीवन को अपने न्यायपूर्ण कार्यों से देश का भाग्य-भाल ऊँचा किया है उनके गौरव की महिमा-मयी कहानी आप तक पहुँचा दी जाए।

इस पुस्तक में लोकमान्य तिलक, राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द, पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय, देश-गौरव महामना मदनमोहन मालवीय, सरदार भगतसिंह, महर्षि कर्वे, राष्ट्रमाता कस्तूरबा आदि के जीवन तथा कार्य-कलापों का रोचक ढंग से वर्णन किया गया है कि उससे हमारे देशवासी बालक, युवा, वृद्ध, नर-नारी सभी उनके संघर्षपूर्ण जीवन की कहानी पढ़ कर लाभ उठा सकते हैं ।

प्रस्तुत पुस्तक को दलगत भावना से दूर रख कर समाज-कल्याण-कारी भावना की दृष्टि से उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया है और यह भी यत्न किया गया है कि जिन राष्ट्रीय नेताओं और समाज-सुधारकों तथा वैज्ञानिकों एवं जिन वीरांगनाओं ने देश की उन्नति के लिए अपना जीवन दाँव पर लगाया अथवा जिनका जीवन राष्ट्र के निर्माण में आज तक लगा हुआ है, उन महापुरुषों का 'जननायक' में जीवन अंकित किया गया है । उनके जीवन दर्शन में केवल उनके जीवन की स्तुति ही नहीं की गई है अपितु विभिन्न स्थलों पर उनके मार्मिक जीवन की कहानियाँ भी अंकित की गई हैं जो नए युग के निर्माण में युवकों को प्रेरणा दे सकती हैं ।

'जननायक' के लिखने की प्रेरणा श्री रघुवीरशरण बंसल से मुझे मिली और पुस्तक की तैयारी में और मेरे इन निबन्धों के संकलन और संपादन आदि में हिन्दी-जगत् के सुप्रसिद्ध लेखक श्री क्षेमचन्द 'सुमन' की

विशेष कृपा रही है। यदि उनका इस ओर मुझे पूरा बल न मिलता, तो मैं इस दिशा में सम्भवतया सफल न हो पाता।

अब तक के अपने लेखन-कार्य में मुझे बहुत से साहित्यकार एवं राष्ट्रीय नेताओं से प्रेरणा मिली है किन्तु इस मार्ग पर चलने का बल महामना मदनमोहन मालवीय जी से आशीर्वाद और स्वर्गीय पं० पदमसिंह शर्मा के ग्रंथों ने भी सबसे पहले जीवन-चरित्र लिखने की प्रेरणा प्रदान की। उनके 'पद्मपराग' तथा फुटकर लेखों से मैंने जीवन-चरित्र लिखने की शैली जानी और बाद में यह गाड़ी किसी-न-किसी तरह आगे चल निकली जो आज भी अपनी धीमी गति से बराबर चल रही है।

'जन-नायक' को लिखते समय यथा-शक्ति यह प्रयत्न किया गया है कि जिन वन्दनीय महापुरुषों की इस पुस्तक में चर्चा की गई है, उनके यशस्वी चरित्र के उन स्थलों का इस ग्रन्थ में उल्लेख करने का विशेष प्रयत्न किया गया है जो किसी का भी जीवन बनाने में सहायक हो सकते हैं। पुस्तक लिखने के समय में मेरी दृष्टि में सभी वर्गों के पाठक सामने रहे हैं इसलिए उन सबका ध्यान रख कर इस पुस्तक को यथा-शक्ति सरल और सुबोध बनाने का प्रयत्न किया गया है।

'जननायक' उन राष्ट्रीय महापुरुषों का जीवन-चरित्र सम्बन्धी ग्रंथ है जिससे सभी लोग लाभ उठा सकते हैं। इसलिए वह न मेरा है न प्रकाशक का वह सभी देशवासियों का अपना प्रिय ग्रन्थ है। क्योंकि इस ग्रंथ में राष्ट्र-निर्माता महापुरुषों की जीवन-गाथा अंकित की गई है इसलिए इस ग्रंथ पर सभी की कृपा और उदार शुभ-कामना अपेक्षित है। मुझे आशा है कि मेरी तुच्छ स्वीकृति 'जननायक' जन-जन के हृदय में स्थान पायेगी और उन सब का बल मुझे मिलेगा।

'जननायक' की रचना में केवल मैं ही अकेला रचयिता नहीं हूं इसमें अन्य कई महानुभावों की कृपा और सहयोग का भी योग सम्मिलित है,

इसलिए उनका भी आभार स्वीकार करके इस ग्रंथ की भूमिका लिखने की कृपा करने वाले श्रद्धेय पत्रकार-प्रवर पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, संसद सदस्य का आभार मानता हूं। श्री चतुर्वेदी जी जीवन-चरित्र लेखन तथा स्कैच आदि के लिखने में सिद्धहस्त यशस्वी लेखक हैं इसलिए उनकी कृपा के लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ और आशा करता हूं कि उनका स्नेह सदैव बना रहेगा और भी जितने सहयोगियों ने इस ग्रंथ के निर्माण में किसी भी प्रकार का सहयोग दिया है उसके लिए मैं सर्वथा आभार मानता हूं।

नवभारत टाइम्स,
दिल्ली।

—फतहचन्द्र शर्मा 'आराधक'

विषय-सूची

राष्ट्र-नेता

★ लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

★ पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय

★ राष्ट्रपिता महात्मा गांधी

★ लौह-पुरुष वल्लभ भाई पटेल

★ राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद

★ मौलाना अबुल कलाम आजाद

★ राष्ट्र-नायक जवाहरलाल नेहरू

★ लोकनायक जयप्रकाश नरायण

भारतीय स्वाधीनता के जन्मदाताओं में लोकमान्य बाल-गंगाधर तिलक का महत्वपूर्ण स्थान है। देशवासियों ने उनकी सेवाओं के प्रति श्रद्धा अर्पित करते हुए उन्हें भगवान् के समान मानकर अपनी सच्ची श्रद्धा व्यक्त की है। हमारे देश में लोक-मान्य तिलक इस युग की राष्ट्रीयता के 'आदि-जनक' कहे जा सकते हैं। जिन दिनों ब्रिटिश सरकार के खिलाफ मुँह खोलना भी घोरतम अपराध समझा जाता था, उन दिनों सारे राष्ट्र को 'स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है', का अमर-मन्त्र देने वाले लोकमान्य तिलक ही थे। प्रशस्त बाहु, भव्य ललाट और सिर पर श्रद्धायुक्त पगड़ी बाँधे और गले में विद्वत्ता के प्रतीक सारे वस्त्र धारण किये हुए लोकमान्य तिलक का वह शरीर आज भी भारतीय जनता के हृदय में आनन्द और उत्साह की लहर दौड़ा देता है। जब उन्होंने भारतीय स्वाधीनता के लिये लगभग ४०-४५ वर्ष पूर्व स्वराज्य को अपने जीवन का प्रमुख

ध्येय बतलाया था, उस समय दिल्ली के सिंहासन के साथ-साथ लंदन के शासन-तन्त्र का भी सिंहासन डोल गया था जिसके सम्बन्ध में यह कहा जाता था कि इस शासन-तन्त्र के क्षेत्र में कभी सूर्य छिपता ही नहीं है। उस शासन को भारत से हटाने की चेतावनी देने वाले लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ही थे। लोकमान्य तिलक निर्भीक नेता अपने निश्चय पर अटल रहने वाले कर्मयोगी महापुरुष थे।

श्री तिलक का जन्म एक प्रतिष्ठित महाराष्ट्रीय ब्राह्मण परिवार में २३ जुलाई, १८५६ में रत्नगिरि (बम्बई) में हुआ था। उनका जन्म का नाम केशव था। बाद में वे व्यवहार में बलवन्तराव तिलक कहलाये। पारिवारिक जनों ने स्नेह का नाम 'बाल' रक्खा। इन सब नामों को मिलाकर हमारे राष्ट्रनायक तिलक, बाल गंगाधर तिलक के नाम से संसार में विख्यात हुए। आपका परिवार सदैव स्वाधीनता-प्रेमी रहा। वही पैतृक गुण आपको भी वरदान में मिले और आप राष्ट्र के महान् नायक सिद्ध हुए। कहा जाता है कि आपके पितामह पेशवा के दरबार में एक विशिष्ट पद पर नियुक्त थे। अंग्रेजों ने कुचक्र चलाकर पेशवा के शासन का अन्त करके जब आपसे अपनी सर्विस में रहने का अनुरोध किया तब उन्होंने कहा कि 'जिस शरीर ने अपने एक स्वामी की स्वराज्य में सेवा की है, उस शरीर से दूसरे विदेशी स्वामी की सेवा नहीं की जा सकती'—यह कहकर आपके पितामह स्वर्गीय पण्डित गंगाधर ने अपने पद को लात मार दी।

जब तिलक स्कूल में पढ़ने भेजे गये तब वे घर के भोजन

के अतिरिक्त कभी कहीं बाहर भोजन नहीं करते थे। स्कूल के दिनों में एक बड़ी मनोरंजन घटना घटी कि कुछ विद्यार्थियों ने मूँगफली खाकर उसके छिलके स्कूल के अन्दर फेंक दिये। स्कूल के अध्यापक ने इन पर मूँगफली खाने का दोष लगाकर छिलके उठाकर फेंकने को कहा। जब इन्होंने छिलके नहीं उठाये तब उस अध्यापक ने इन्हें स्कूल से बाहर निकाल दिया। ज्योंही तिलक बाहर आये, सारा स्कूल उनके साथ बाहर आ गया। अध्यापक को मुँह ताकते रह जाना पड़ा। जब स्कूल के अध्यापक ने इनके पिता को एक शिकायती पत्र लिखा तब पिता ने अपने पुत्र की बात का समर्थन किया और यहाँ भी अध्यापक को लज्जित होना पड़ा; बल्कि उलटे इनके पिता ने निर्भीकता के फलस्वरूप इन्हें दो रुपये पुरस्कार के रूप में दिये। श्री तिलक की शिक्षा स्कूल के अतिरिक्त घर में भी हुई थी। घर पर इनके पिता इन्हें पढ़ाते थे और वे एक श्लोक कंठस्थ कर लेने पर एक पाई पुरस्कार प्रदान करके शिक्षा के प्रति इनका उत्साह बढ़ाते थे। श्री तिलक स्वयं तीव्र बुद्धि और प्रतिभाशाली बालक थे। उन्होंने आठ वर्ष की अवस्था में ही बाणभट्ट की 'कादम्बरी' को याद कर लिया था। इस तरह से उन्होंने १८७२ में दसवीं परीक्षा और १८७९ में बी० ए०, एल-एल० बी० की परीक्षाएँ पास कर लीं। यद्यपि शिक्षण-काल के अन्तिम दिनों में बहुत-सी कठिनाइयाँ भी उठानीं पड़ीं किन्तु आप उनसे विचलित नहीं हुए। उन्होंने शिक्षा पाकर नौकरी करने का प्रयत्न नहीं किया।

लोकमान्य तिलक का राष्ट्रीय जीवन में प्रवेश लगभग

१८८० में हुआ था। उन्हीं दिनों इन्होंने महाराष्ट्र के प्रसिद्ध विद्वान् चिप्लूणकर के साथ न्यू इंगलिश स्कूल की स्थापना की। यह स्कूल कालान्तर में फरगुसन कालेज के नाम से प्रसिद्ध हुआ। लोकमान्य तिलक के हृदय में जहाँ शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्ति करने की बलवती भावना विद्यमान थी वहाँ वे अपने क्षेत्र में एक राष्ट्रीय पत्र न होने की एक बहुत बड़ी कमी का अनुभव कर रहे थे। उन्होंने अपने एक अन्यतम साथी से सहयोग प्राप्त करके मराठी भाषा में 'केसरी' और अंग्रेजी में 'मराठा' नाम से दो पत्रों का प्रकाशन किया। ये दोनों पत्र आज भी चल रहे हैं, किन्तु लोकमान्य के जीवन-काल में इन पत्रों ने जो जन-सेवा की और राष्ट्रीय भावना को उभारने में जो काम किया, वह अभूतपूर्व था। ये पत्र जितने जनता के लिए लोक-प्रिय थे उससे भी कहीं अधिक सरकार की आँखों में खटकने वाले थे और इनमें प्रकाशित लेखों के आधार पर बहुत बार सरकार ने लोकमान्य को बन्दी भी बनाया था। एक बार कोल्हापुर के महाराज शिवाजी राव को पदच्युत करके शासन की बागडोर माधव राव बरवे को दी गई। उसके व्यवहार से जनता असन्तुष्ट थी। जब लोकमान्य तिलक ने इस जन-घातक नीति का विरोध किया तब उन पर मुकदमा चलाया गया और चार मास के कारावास का दण्ड दिया। जिन और पत्रों ने सरकारी नीति की आलोचना की थी उन पत्रों के सम्पादक क्षमा-याचना करके मुक्त हो गये थे। लोकमान्य तिलक कट्टर-पंथी नहीं थे अपितु कट्टर सुधारवादी भी थे। श्री तिलक चाहते थे कि जनता को सुधार के मार्ग पर धीरे-धीरे ले जाना

चाहिए, उसे बलात् सुधार की ओर प्रवृत्त नहीं करना चाहिए। जब बम्बई में सरकार ने सामाजिक कार्यों में हस्तक्षेप करना चाहा तब तिलक ने उसका डटकर विरोध किया। लोकमान्य तिलक समाचार-पत्रों के सम्पादन के अतिरिक्त राजनीतिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में भी सेवा करते थे और इन दोनों से समय निकाल कर स्वाध्याय भी करते थे। लोकमान्य तिलक को अपने स्पष्टवादी विचारों के कारण कई बार जेल की यातनाएँ भी सहनी पड़ीं। १८९७ में प्लेग और अकाल की विभीषिका से जब महाराष्ट्र सन्तप्त था उन दिनों सरकार की ओर से इस विभीषिका के निवारण के लिये जो कमेटी बनाई गई वह अत्यन्त बर्बर सिद्ध हुई। लोकमान्य तिलक ने इस सरकारी कमेटी का जोरदार विरोध किया। 'केसरी' में सरकारी आलोचना प्रकाशित होने से सरकार तिलक पर क्रुद्ध थी और जब प्लेग कमेटी के अध्यक्ष श्री रेंड की हत्या हो गई तब उसके हत्यारे चापेकर से अधिक कहीं आपको अपराधी माना गया और १८ मास की कैद की सजा दी गई। तिलक की इस सजा के समाचार से देश में तहलका मच गया और विवश होकर सरकार ने आपको ६ मास से पहले ही छोड़ दिया। दूसरी बार १९०८ में इन्हें सजा दी गई और बहुत बहस करने के बाद भी इन्हें सजा भुगतनी पड़ी। वे इस दण्ड को सुनकर घबराये नहीं और उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक ६ मास का निर्वासन-दण्ड स्वीकार कर लिया। तिलक उन दिनों लगभग पचास वर्ष के थे और उनके निर्वासन-दण्ड का सारे देश में विरोध किया गया। तिलक किसी क्षण भी बेकार बैठना पसन्द नहीं करते थे। उन्होंने

अपने मांडले के निर्वासन-जीवन में अध्ययन आरम्भ किया और वहाँ बैठकर एक महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी; जिसका नाम 'गीता रहस्य' है। वहाँ से छूटने के बाद अपना स्वास्थ्य खराब होने पर भी उन्होंने स्वराज्य संघ स्थापित करके स्वराज्य-सम्बन्धी भाषणों का प्रचार किया। इस प्रकार से खिन्न होकर सर वेलेंटाइन ने अंग्रेजी में एक पुस्तक लिखी, जिसका शीर्षक था 'भारत में अशान्ति'। उसमें अशान्ति का जनक लोकमान्य तिलक को बताया गया था। तिलक को इस ग्रन्थ के प्रति आपत्ति थी और वे लंदन जाकर उस ग्रन्थ के लेखक पर मुकदमा चलाना चाहते थे। पहले तो उन्हें विदेश-यात्रा की स्वीकृति नहीं दी गई। अन्त में उन्हें स्वीकृति मिली और लंदन में जाकर उन्होंने प्रिवी कौंसिल में मुक़दमा दायर किया। तिलक के प्रबल प्रमाणों के बाद भी प्रिवी कौंसिल ने अपना निर्णय तिलक के विरुद्ध दिया। यद्यपि उनकी इस विदेश-यात्रा और मुकदमे में बहुत खर्च हुआ था किन्तु इंग्लैंड में रहने वाले भारतीय तथा विदेशी लोग यह जान सके कि भारत में इस समय क्या स्थिति है। तिलक अमेरिका के राष्ट्रपति श्री विलसन से भी मिले और उनकी सहायता से उन्होंने संयुक्त राष्ट्र संघ के नाम भारतीय स्वाधीनता के लिए एक पत्र भी लिखा। विदेश से वापस लौटने पर तिलक अमृतसर काँग्रेस के अधिवेशन में भाग लेने गये और वहाँ पर उन्होंने कहा कि जो सरकार से हमें मिल चुका है वह ले लेना चाहिए और आगे के लिये आन्दोलन करते रहना चाहिये।

१९१४ में जेल-मुक्त होने के साथ ही आपको पत्नी के

वियोग का दुःख भी सहना पड़ा। १ अगस्त १६२० को महात्मा गांधी असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ करने वाले थे, किन्तु सबसे बड़ा असहयोगी ३१ जुलाई १६२० के दिन रात में सबको छोड़कर परमधाम को चला गया। अपने निधन से पूर्व लोकमान्य तिलक कोलम्बो में गये थे, वहाँ आपकी ६४वीं वर्ष गाँठ उत्साह पूर्वक मनाई गई। वहाँ से लौटते समय आपको सर्दी लग गई और उसके बाद वह स्वस्थ नहीं हो सके। लोकमान्य तिलक का जीवन हमारे लिये एक ऐसे दिव्य महापुरुष का जीवन है। भारतीय जनता जिससे निरन्तर प्रेरणा ग्रहण करतो रहेगी।

लाला लाजपत राय का जन्म सन् १८६५ में पंजाब के लुधियाना जिले के अन्तर्गत जगराँव नामक स्थान में अग्रवाल वैश्य वंश में हुआ था। आपके पिता लाला राधाकिशन सरकारी स्कूल में उर्दू के अध्यापक थे। सन् १८७७ में लाला लाजपत राय ने स्वामी दयानन्द सरस्वती के एक मतानुयायी की भाँति शिक्षा ग्रहण की। लाला जी ने एक ओर अपने कांग्रेस-भक्त पिता से स्वदेश-प्रेम तथा दूसरी ओर अपनी माता से सरलता एवं मितव्ययता की शिक्षा पाई थी। यद्यपि आप सर्वप्रथम सर सैयद अहमद खाँ के राजनीतिक दृष्टिकोण से अत्यन्त प्रभावित हुए थे तथापि बाद में आपके चरित्र पर इटली के देशभक्त मेजिनी और गैरीबाल्डी तथा महाराष्ट्र-उद्धारक शिवाजी की स्पष्ट छाप दृष्टिगोचर होने लगी थी। आपने शिवाजी एवं भगवान् श्री कृष्ण का चरित्र भी लिखा।

आपके पिता लाला राधाकृष्ण स्वयं शिक्षक थे अस्तु, उन्होंने अपनी सन्तान की शिक्षा-दीक्षा पर विशेष रूप से ध्यान दिया। लाला लाजपत राय मेधावी छात्र थे। उन्होंने छात्र-वृत्ति प्राप्त करके सरकारी कालेज, लाहौर में दो वर्ष तक

कानून-विषय का अध्ययन किया तथा सन् १८८३ में कानून की प्रथम परीक्षा और सन् १८८५ में पंजाब विश्वविद्यालय की कानून की परीक्षा में तीस परीक्षार्थियों में द्वितीय स्थान पाया। इसके बाद आप हिसार में वकालत करने लगे।

पंजाब-केसरी लाला लाजपत राय के देहावसान पर गांधी जी ने कहा था कि "लाला जी अपने आपमें एक संस्था थे। अपनी जवानी के समय से ही उन्होंने देशभक्ति को अपना लिया था। वह अपने देश से इसलिए प्रेम करते थे कि वे सारे संसार से प्रेम करते थे। उनकी राष्ट्रीयता, अन्तर्राष्ट्रीयता से भरपूर थी और उनकी सार्वजनिक सेवाएँ अनन्त थीं। लाला जी अपूर्व उत्साही, समाज-सेवक और धर्म-सुधारक भी थे। उन दिनों कोई ऐसा सार्वजनिक आन्दोलन नहीं था जिसे लाला जी का सहयोग न मिला हो। लाला जी की भूख सदैव सेवा-पथ में लगी रही और उन्होंने दलितों—पीड़ितों की बड़ी सेवा की। जहाँ वे किसी पर दुःख की घटना सुनते, वहाँ ही अपनी सेवाएँ लगा देते।" बापू की यह श्रद्धांजलि सच्चे अर्थों में लाला लाजपत राय के जीवन का महत्व प्रकट करती है।

काँग्रेस के पुराने कार्यकर्ताओं में लाला जी का विशिष्ट स्थान था। वे पहली बार प्रयाग में होने वाली चौथी कांग्रेस में एक साधारण दर्शक के रूप में गये थे और वहाँ भी उन्होंने कांग्रेस में कौंसिलों के बढ़ाये जाने के प्रस्ताव का समर्थन किया था, पर बनारस कांग्रेस के अवसर पर उनका विशेष व्यक्तित्व एक बड़े नेता के समान प्रकट हुआ। लाला जी पर पहले पंजाब में आर्य समाज की क्रान्तिकारी परम्परा का

प्रभाव पड़ा और वे आर्य समाज के कुशल कार्यकर्ता बन गये। इसी प्रकार अपनी सार्वजनिक सेवा करते हुए उस समय पड़ने वाले दुर्भिक्षों में जनता की बड़ी सहायता की और १९०१ के दुर्भिक्ष कमेटी की जाँच में पंजाब सरकार की ओर से गवाही देने भी वे भेजे गये थे।

कांग्रेस में उनके प्रवेश की एक नई घटना है। वह पहले अपने पिता से सर सैयद की प्रशंसा सुना करते थे और सर सैयद ने जब अपना मार्ग बदल कर एक धार्मिक नेता के रूप में अपना कार्य प्रारम्भ किया तब लाला जी और उनके पिता ने उसके विरोध में कई पत्रों में लिखा। कांग्रेस में आप पहले-पहल जार्ज यूल की अध्यक्षता में मनाये गये कांग्रेस के इलाहाबाद अधिवेशन में गए। इस कांग्रेस में पहली बार ही आपके भाषण को सुनकर लोगों ने उनके भावी जीवन के प्रति बड़ी आशा प्रकट की थी। कांग्रेस के कार्य में शिक्षा और उद्योग-धन्धों को स्थान लाला जी तथा मालवीय जी के सतत प्रयत्नों से ही मिला था। मालवीय जी ने एक कांग्रेस के अधिवेशन में उस रहस्य को खोला था जिसके कारण भारत के उद्योग-धन्धों की क्षति हो रही थी। जब सुब्रह्मण्यम् अपने चीफ जज के पद से अवकाश ग्रहण करने लगे, तब मालवीय जी के द्वारा प्रभावित होकर वे ग्रामों की सेवा की ओर प्रवृत्त हुए और लाला जी के कथन से शिक्षा आदि की ओर। कांग्रेस में तो वे पंजाब का सदैव ही प्रतिनिधित्व करते थे। एक बार वे गोपालकृष्ण गोखले के साथ एक शिष्टमण्डल में सम्मिलित होने के लिए लन्दन भी गए थे।

विदेशों में देश-सेवा के काम करने की दिशा में आपको भी विशेष महत्व दिया जाता है। जिस प्रकार श्याम जी कृष्ण वर्मा और अन्य दलों ने विविध प्रकार से भारत की स्वाधीनता के लिए विदेशों में प्रयत्न किये थे, उसी प्रकार आपने भी अपने विदेश-प्रवास काल में अपने लेखों और भाषणों से उल्लेखनीय कार्य किया था। आपका कार्य वहाँ लन्दन आदि में इतना उग्र माना जाता था कि वहाँ की पुलिस के गुप्तचर सदैव आपके कार्यों की टोह में लगे रहते थे। जब वे भारत लौटने लगे तो उन्हें पासपोर्ट नहीं दिया गया। विदेशों में आपने इण्डियन होमरूल लीग और इण्डिया इनफारमेशन—दो संस्थाएँ खोल कर अच्छा प्रचार किया था। उनकी पहली संस्था के सदस्य बहुत-से अमरीकन भी हो चुके थे। लाला जी ने विदेशक प्रवास के अवसर पर 'यंग इण्डिया' नाम से एक साप्ताहिक पत्र भी निकला था। विदेश-प्रवास में आपने हर प्रकार से भारतीयों को संगठित करके भारतीय स्वाधीनता के लिए काफी प्रयास किया था। १९०७ में उन्हें मांडले जेल में नज़रबन्द कर दिया गया। वे अपनी नज़रबंदी में भी बराबर देश-सेवा की ओर सचेष्ट रहे। अमरीका से वापसी के बाद भी वे बराबर देश-सेवा के कार्यों में लगे रहे।

राजनीति में उग्रवादी दल को संचालित करते समय वे एक नये नाम से बोले जाने लगे। उन दिनों विपिनचन्द्र पाल और बाल गंगाधर तिलक का कार्य देश में उग्रवादी सतह पर तेज़ी से चल रहा था। तब लाला जी के उग्रवादी कार्यों ने उन्हें भी तिलक और विपिन बाबू के संयुक्त नाम से बाल-

पाल-लाल कहा जाता है। तभी से 'बाल-पाल-लाल' विख्यात है।

पंजाब की राजनीति तो उनकी ही देन है। वहाँ पर जो भी जन-जागरण हुआ उसका सारा श्रेय उन्हीं को दिया जा सकता है। वे उसके लिए कई बार जेल-निष्कासन, नजर-बन्दी आदि के लिए दण्डित किये गये ; पर लाला जी की देशभक्ति तपाये हुए सोने के समान तेजस्वी ही होती गई। स्वराज्य दल में आप रहे और उसकी ओर से उसके सदस्य भी बने, पर मतभेद होने पर १९२६ में मालवीय जी के साथ नेशनलिस्ट पार्टी का कार्यक्रम अपनाया। १९२७ में वे फिर कांग्रेस में आ गये।

लाला जी ने हिन्दुओं के जागरण के लिए भी बड़ा काम किया था। माण्डले की नज़रबन्दी में लिखे गए उनके धार्मिक निबन्ध भी बड़ी चर्चा के विषय हैं। आपने पंजाब में हिन्दू महासभा की स्थापना की थी ; और बाद में कलकत्ता हिन्दू महासभा के प्रांतीय अधिवेशन के सभापति बने थे।

सार्वजनिक सेवा के क्षेत्र में आपके हरिजनोद्धार के कार्य भी विशेष रूप से प्रशंसनीय हैं। आपने सियालकोट आदि में अच्छा काम किया था। आपके द्वारा संस्थापित लोक सेवक संघ (जिसके वर्तमान अध्यक्ष बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन हैं) बराबर लाला जी के अधूरे काम को पूरा कर रहा है।

लाला जी केवल राजनीति के रंगमंच के खिलाड़ी या और प्रकार से विशेष भाषण दाता ही नहीं थे। ये वास्तव में एक साहित्य-साधक, कुशल लेखक और प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति

भी थे। उनके द्वारा लिखे गए ग्रंथों में मेंजिनी, गैरीबाल्डी, शिवाजी, कृष्ण, बंदा बैरागी, स्वामी श्रद्धानन्द गुरुदत्त विद्यार्थी आदि के जीवन-चरित्रों ने नवयुवकों को पर्याप्त प्रेरणा प्रदान की थी। उन्होंने अपनी लेखनी के सम्बन्ध में कहा था कि "कलम ही मेरी जायदाद है।" आर्यसमाज के इतिहास और भारत के राजनीतिक दृष्टिकोण पर आपने और भी कई पुस्तकें लिखीं। आपके लिखे गये लेख उर्दू तथा अंग्रेजी के अनेक पत्रों में गौरव के साथ प्रकाशित होते थे।

भारत में जब साईमन कमीशन का बहिष्कार १९२८ में सारे देश में हुआ, तब पंजाब में वे स्वयं 'साईमन कमीशन लौट जाओ' के नेता बने। ३० अक्तूबर को जब कमीशन लाहौर में पहुँचा और उसका विरोध हुआ तब वहाँ पुलिस अधिकारियों ने चिढ़ कर जूलस पर लाठी चार्ज किया जिसके फलस्वरूप लाला जी के सिर में लाठियों की चोट लगने से उनका देहावसान १७ नवम्बर को प्रातः सात बजे हो गया।

लाला जी ने अपने अन्तिम क्षणों में भी जो कहा था कि "मेरे शरीर पर पड़ी हुई एक-एक चोट ब्रिटिश साम्राज्य के कफन की कील होगी", उनके ये शब्द अक्षरशः सत्य निकले और अंग्रेजी सरकार यहाँ नहीं टिक सकी।

भारतीय युवक उनके इस कथन सेकि "मेरा मजहब हक-परस्ती है और मेरी अदालत मेरा अन्तःकरण है और मेरी कलम मेरी जायदाद है और मेरा मन्दिर मेरा दिल है और मेरी उमंगें सदा जवान हैं,"—सदा प्रेरणा लेते रहेंगे।

लाला जी ने जहाँ शिक्षा के क्षेत्र में यशस्वी कार्य किया था, वहाँ अछूतोद्धार की शिक्षा में भी विशेष कदम बढ़ाया था। अछूतोद्धार के लिए लाला जी ने अखिल भारतीय स्तर पर एक संस्था की स्थापना की थी। १९२४ में मेरठ में कुमार आश्रम खोल कर आपने इस दिशा में एक क्रियात्मक रूप प्रदान किया था। मेरठ में लाला जी द्वारा स्थापित वैश्य अनाथालय भी अनाथों के प्रति उनके दयाभाव का परिचायक है।

जब मालवीय जी महाराज ने हिन्दी की मान्यता के लिए ज़ोरदार आन्दोलन किया था, उस समय आपने भी पूरा सहयोग दिया था। हस्ताक्षर कराने तथा भाषणों द्वारा जनमत जागृत करने में आपने विशेष योग दिया था।

लाला जी मतदान-प्रणाली के सम्बन्ध में साम्प्रदायिक आधार पर मतदान के विरोधी थे। लाला जी ने तो इस दृष्टि को सामने रख कर ही नये दल की स्थापना की थी जो संयुक्त मतदान प्रणाली का पक्षपाती था।

शिक्षा के क्षेत्र में भी उन्होंने कई संस्थाओं की स्थापना कराई जिनमें लाहौर का डी० ए० वी० कालिज प्रमुख है।

लाला जी भारतीय संस्कृति के परम भक्त थे। इसके लिए देश-विदेश दोनों में उन्होंने काम किया था। लाला जी ओजस्वी पत्रकार थे। पंजाबी 'वन्दे मातरम्' और 'पीपुल' उनके उदगारों के मूर्तिमान पत्र थे।

लाला जी का कार्यक्षेत्र अत्यन्त विस्तृत था। लाहौर में 'तिलक राजनीतिक विद्यालय' का खर्च आप ही वहन करते थे। कलकत्ता हिन्दू महासभा के भी आप अध्यक्ष थे। सन्

१६५१ में आपने अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के द्वितीय अधिवेशन की अध्यक्षता भी की थी। आप श्रमिकों के प्रतिनिधि के रूप में जेनेवा भी भेजे गए थे। आपने वहाँ श्रमिकों की उन्नति के लिए बहुत कार्य किया था। लाला जी का विश्वास था कि यद्यपि व्यवस्थापिका सभा से असहयोग करने से कुछ भी न होगा तो भी आप कांग्रेस के निश्चय के अनुसार व्यवस्थापिका सभा में नहीं गए। पीछे जब कांग्रेस ने कौंसिल-प्रवेश का प्रस्ताव किया तब आपने प्रवेश किया और दल के नेता चुने गये। स्वास्थ्य खराब रहने पर भी उन्होंने श्री गोखले के साथ इंग्लैण्ड, अमेरिका तथा यूरोप जा कर अपने देश की करुण-कहानी सुनाई।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का जीवन एक ऐसे महापुरुष का जीवन रहा है जिन्होंने मानवता के हर क्षेत्र में शान्ति-पूर्वक दानवता का दमन करके भारतीय जन-मार्ग-दर्शन कराया था। उनके इस प्रयत्न से देश में जहाँ नव-जागरण हुआ वहाँ सारे विश्व में भारत का नाम गांधी के देश के नाम पर विख्यात हो गया। गांधी जी ने जीवन के मार्ग में शान्ति और दानवता के स्थान पर प्रेम के स्वरूप को अपनाया था। यह सब गाँधी जी का ही प्रयत्न था कि भारत की मृतप्राय हिन्दू संस्कृति में नव-जीवन का संचार हुआ और विश्व में अपमानित भारत का नाम गौरव के साथ लिया जाने लगा। गांधी जी ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अभूतपूर्व क्रान्ति की, हर वर्ग को उन्नत करने का उन्होंने काम किया। उन्होंने रूढ़िग्रस्त तथा बन्धनों में जकड़े भारत को चेतनता प्रदान की।

महात्मा गांधी भारत के ही नहीं अपितु संसार के सर्व-

श्रेष्ठ महापुरुषों में गिने जाते हैं। उनके ही नेतृत्व में भारतीय स्वाधीनता संग्राम की लड़ाई लड़ी गई और भारत स्वाधीन हुआ। किसी को कल्पना भी नहीं थी कि जिस ब्रिटिश सरकार के शासन में सूर्य भी अस्त नहीं होता वह भारत से इस प्रकार चला जायगा और बिना रक्त की एक बूँद बहे भारत पर भारतवासियों का आधिपत्य हो जायगा।

भारत को स्वाधीन कराने वाले इस महापुरुष का जन्म २ अक्तूबर १८६९ में गुजरात प्रान्त के पोरबन्दर नामक स्थान में हुआ था। इनके पिता श्री कर्मचन्द गांधी पोरबन्दर और राजकोट के दीवान रह चुके थे। गांधी जी ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा राजकोट में प्राप्त की और वहीं से १८८७ में मैट्रिक की परीक्षा पास की। उच्च शिक्षा के लिये वे विलायत गये और वहाँ से बैरिस्टर बन कर भारत आये। यहाँ आकर वकालत का व्यवसाय करने लगे। इसी व्यवसाय के सिलसिले में महात्मा गांधी को अफरीका जाना पड़ा। वहाँ की सरकार भारतीयों के साथ अच्छा बर्ताव नहीं करती थी। स्वयं गांधी जी को भी वहाँ कई बार गोरों से अपमानित होना पड़ा। इन्हीं कारणों से आपने वहाँ आन्दोलन चलाया और उसमें सफलता प्राप्त की। गांधी जी ने अफरीका में १९०७ से लेकर १९१४ तक अपना आन्दोलन चलाया और अन्त में वहाँ के काले क़ानून बन्द हुए और प्रवासी भारतीयों को नागरिक अधिकार मिले।

जब महात्मा गांधी भारत आये थे तब यहाँ भारत को स्वाधीन बनाने के प्रयत्न शुरू हो गये थे। काँग्रेस की स्थापना

हो चुकी थी और लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय तथा महामना मदनमोहन मालवीय आदि नेता भारत को स्वाधीन कराने का कार्य कर रहे थे। भारत आने पर महात्मा जी ने समस्त देश का भ्रमण किया और यहाँ की स्थिति का भली प्रकार अवलोकन करके १९१७ में यहाँ की राजनीति में प्रवेश किया। लोकमान्य तिलक के तेजस्वी व्यक्तित्व से राष्ट्र में नयी चेतना तथा स्फूर्ति का संचार हुआ था। उनकी ओजस्वी वाणी से राष्ट्र ने स्वराज्य के जन्मसिद्ध अधिकार होने की दीक्षा ली थी। महात्मा गांधी ने उनकी इस घोषणा को सफल करके दिखा दिया और देश को स्वाधीन करने का गौरव उन्हें मिला।

महात्मा गांधी की राजनीति ने पराधीन भारत की नसों में स्वावलम्बन और आत्मविश्वास की भावना पैदा की। स्वदेशी वस्त्रों का अवलम्बन और विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार गांधी जी के स्वराज्य-आन्दोलन का आधार था। चरखा और खादी को गांधी जी ने अपना अस्त्र बनाकर गाँव-गाँव में स्व-राज्य की भावना को फैला दिया और जनता के लिए वह रोटी और जीवन का ऐसा प्रश्न बन गया जिसको हल किये बिना उनको चैन से बैठना असम्भव हो गया। गांधी जी ने स्वराज्य-आन्दोलन को सर्वव्यापी बनाया और नमक-कर-आन्दोलन, चौराचोरी आन्दोलन तथा कई अन्य आन्दोलनों को चलाकर देश में जागृति उत्पन्न की। महात्मा गाँधी जी ने १९४२ में अंग्रेजो 'भारत छोड़ो', आन्दोलन भी आरम्भ किया। विदेशी सरकार गांधी जी की गतिविधियों को देखती रही और

स्वराज्य आन्दोलन को फीका करने तथा समाप्त करने के लिये बल प्रयोग किया गया। कई स्थानों पर उसने निहत्थी जनता पर लाठी और गोली का प्रहार भी किया, किन्तु यातनाओं, बर्बरतापूर्ण कृत्यों तथा जेल की कोठरियों को भरने पर भी भारतीय जनता ने हिम्मत न हारी और गांधी जी के नेतृत्व में बराबर कार्य करती रही। गांधी जी द्वारा चलाये गये विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार पर लाखों लोगों ने अपने अमूल्य विदेशी वस्त्रों की होली जलाई। असहयोग की आँधी में सैकड़ों व्यक्तियों ने अपने धन्धे तथा सरकारी नौकरियों को लात मारकर देश-सेवा का मार्ग अपनाया।

महिलाओं की जागृति गांधी-युग की सबसे बड़ी देन है। भारत की नारी इसके लिये शताब्दियों तक महात्मा गांधी की ऋणी रहेगी। गांधी जी स्त्रियों के सम्बन्ध में कहा करते थे कि स्त्री अहिंसा की मूर्ति है। वह अशान्त संसार को शान्ति का पाठ पढ़ा सकती है और अहिंसक लड़ाई में नेता बन सकती है। गांधी जी बराबर स्त्रियों का पक्ष लिया करते थे। वह उनको उच्च-से-उच्च स्थान पर रखना चाहते थे। एक बार उन्होंने लिखा था कि यदि मेरी राय मानी जाय तो मैं भारत सरकार के उच्च पद पर महिलाओं को बिठाऊँ।

महात्मा गांधी ने दलितों और हरिजनों की अवस्था सुधारने का कार्य भी किया था। हरिजनों को हिन्दू-समाज से विलग कर देने वाले काले कानून के विरुद्ध उन्होंने अपने जीवन की बाजी लगा दी थी। यही नहीं, वे हरिजन भाइयों के लिये भिक्षुक तक बने और अन्त में उन्होंने अपने-आपको

उनके साथ तन्मय करने में भी संकोच नहीं किया। वे 'हरिजन हितू' के नाम से विख्यात हुए।

गांधी जी अपने सारे जीवन में एकता के पोषक रहे। *यद्यपि वे अधिक जीना चाहते थे और उन्होंने एक अवसर पर* कहा भी था कि मेरे जीने से धार्मिक सहिष्णुता और हिन्दू-मुस्लिम एकता बढ़ेगी। वे भारत के सभी वर्गों के आराध्यदेव थे। उन्होंने अपनी प्रार्थना में एक बार यह भी कहा था कि यदि आप लोग मुझे अपने बीच देखना चाहते हो तो मेरी यह शर्त है कि भारत की सभी जातियाँ एक-दूसरे से मिलकर शान्तिपूर्वक रहें। उनका कहना था कि परस्पर झगड़ों को बल से हल न करके प्रेम से करें ताकि हम विश्व को भी अपने प्रेम के बन्धन में बाँध सकें।

महात्मा गांधी एकता के समान देश में अच्छे साहित्य का प्रचार भी करना चाहते थे। यह प्रेरणा गांधी जी को अपने विद्यार्थी जीवन से मिली थी। जिन दिनों गाँधी जी लंदन में बैरिस्टरी पास करने गये थे। उस अवसर पर गांधी जी को उनके थियोसफी सिद्धान्तों के मित्रों ने गीता-पाठ में योग देने को बुलाया। गांधी जी तब तक इस मसले में कोरे ही थे। लेकिन उस दिन का गीता पाठ उनके जीवन को अमर कर गया। यहाँ से गांधी जी ने गीता के 'ध्यायतो विषयानपुंसः' नामक गीता के श्लोक के सहारे जीवन बनाया और जीवन भर उस पर चलते रहे। गांधी जी के कार्यों से देश की जिन भाषाओं को भारी प्रोत्साहन मिला, उनमें सबसे अधिक हिन्दी कृतार्थ हुई। हिन्दी भाषा में गांधी जी के सम्बन्ध में इतनी

भारी संख्या में साहित्य है जितना किसी भी भाषा में किसी भी महापुरुष और सन्त पर नहीं हो सकता। गांधी जी ने अपने व्यवहार में भी हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं को प्रोत्साहन दिया तथा प्रार्थना आदि के अवसरों पर उन्होंने उन सन्तों की वाणी को जनता की प्रिय वाणी बनाया जिनसे जनता दूर भागती थी।

गांधी जी ऐसे साहित्य का प्रकाशन उचित समझते थे जिसके द्वारा जन-समाज का स्तर ऊँचा हो। बौद्धिक विकास के साथ जनता का चरित्र बल भी बढ़े, यही गांधी जी साहित्य से आशा रखते थे। उन्होंने एक अवसर पर कहा था कि 'गन्दगी बखेरने वाले साहित्य से अच्छाई पैदा नहीं हो सकती,' इस सम्बन्ध में गांधी जी ने ऐसे साहित्य का बहिष्कार करने का सुझाव दिया। गांधी जी ने समय-समय पर चेतावनी दी थी कि साहित्य को ओछे हथियारों के रूप में प्रयोग करना ठीक नहीं।

ईश्वर में गांधी जी की अटल भक्ति थी। गीता के उपदेश के अनुसार वे जो काम करते थे उसे निष्काम रूप से करते थे। आपको अन्तरात्मा से ईश्वर की प्रेरणा जब तक न मिलती थी, आप किसी भी काम को हाथ नहीं लगाते थे। यदि आपको किसी काम में सफलता मिलती थी तो उसका श्रेय परमात्मा को ही देते थे। महात्मा जी को सर्वत्र ईश्वर-ही-ईश्वर दिखाई देता था। यही कारण था कि उनका जीवन सबके लिए ईश्वरीय प्रेम के महासागर जैसा अगाध और

विशाल था। महात्मा गांधी की ईश्वर में जो निष्ठा थी वह "सर्व भूत हिते रत:" में प्रकट हुई। उनका सारा जीवन दरिद्र-नारायण की सेवा में व्यतीत होता था।

३० जनवरी १९४८ को जब आप संध्या-समय प्रार्थना स्थल पर जा रहे थे तब एक पथ-भ्रष्ट युवक ने पिस्तौल चला कर आपको भारतीय जनता के बीच से अलग कर दिया। आपकी देह रक्त से लहू-लुहान होकर भूमि पर लुढ़क पड़ी। उस समय भी गांधी जी के मुख से 'राम-राम' का शब्द निकला और उन्होंने इस नश्वर-शरीर को छोड़कर परमधाम की ओर प्रयाण किया।

महात्मा गांधी जी की मृत्यु पर संसार के सब देशों ने जितना शोक और विषाद प्रकट किया, उतना पहले कभी किसी व्यक्ति की मृत्यु पर नहीं किया गया था। दूर-दूर के देशों के नेताओं ने शोक प्रकट किया और कहा, महात्मा जी की मृत्यु से संसार की जो क्षति हुई है वह पूरी नहीं हो सकती।' वे भारत के ही नहीं अपितु संसार के महापुरुष थे और मानवता के कल्याण के लिये ही उन्होंने अपना समस्त जीवन अर्पण किया था।

आज गांधी जी हमारे बीच में नहीं हैं। केवल उनके सिद्धान्त ही हमारे सामने हैं, जिन्हें अपनाकर हम उनका यश देश में कायम रख सकते हैं। गांधी जी राजनीतिक स्वतन्त्रता से भी अधिक महत्वपूर्ण और आवश्यक रचनात्मक कार्यों को मानते थे। उनके द्वारा बताये गये इस मार्ग पर चल कर

भारत केवल उन्नति ही नहीं करेगा, बल्कि संसार के राष्ट्रों के सामने एक उदाहरण प्रस्तुत कर सकता है। आज स्वाधीन भारत के सामने प्रान्तवाद एवं संकीर्ण विचारधारा का भय प्रबल होता जा रहा है, यह भय गांधी जी द्वारा बताये गये 'सबको अपना बनाने का प्रयत्न करो' मार्ग से दूर किया जा सकता है।
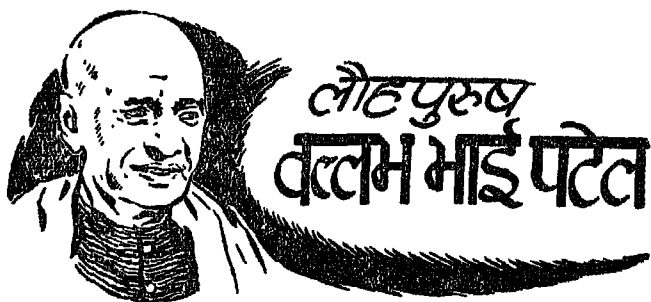
संसार के इतिहास में ऐसे राजनीतिज्ञ नेता बहुत ही कम मिलते हैं जिनमें योद्धा और शासक दोनों गुणों का सम्मिश्रण हो। सरदार वल्लभ भाई पटेल ऐसे ही नेताओं में थे। वे योद्धा के साथ-साथ कुशल प्रशासक भी थे। महात्मा गांधी के सहयोगी बनकर जब सरदार पटेल ने बारदोली के सत्याग्रह का नेतृत्व किया था तब लोगों को यह पता लग गया था कि वह वैसे सफल सरदार और कुशल सेनापति हैं। इसके बाद सरदार पटेल ने देश के अहिंसात्मक संग्राम में योद्धा ही नहीं अपितु सेनापति के अद्भुत गुणों का परिचय दिया। नागपुर के झण्डा-सत्याग्रह की विजय का श्रेय प्राप्त करने के बाद आप कहीं भी पराजित नहीं हुए। १९३६ में जब कांग्रेस ने सीधी लड़ाई का मार्ग त्यागकर वैधानिक कार्यक्रम को अपनाया तब श्री पटेल ने कांग्रेस पार्लियामेन्टरी बोर्ड के प्रधान के नाते जिस दृढ़ता के साथ कार्य का संचालन किया उससे आपकी

उस नियन्त्रण-शक्ति का परिचय मिलता है जिसके बिना कोई भी शासक अपने कार्य में सफल नहीं हो सकता। केन्द्रिय शासन का भार काँग्रेस द्वारा लेने पर अन्तरिम सरकार में सरदार वल्लभ भाई पटेल ने अपनी योग्यता की धाक जमा ली थी और जब १५ अगस्त १९४७ को आप उपप्रधान मंत्री बनाये गये तब आपने भारत को सुदृढ़ करने में महान् कार्य किया।

३१ अक्तूबर १८७५ में इस युगपुरुष का जन्म गुजरात प्रान्त के खेड़ा जिले के नाडियाड ताल्लुके के एक छोटे से गाँव कमरसद में हुआ था। सम्भवतः यह ईश्वर की इच्छा ही थी कि किसानों और गाँवों के इस विशाल देश का प्रथम उप-प्रधान मंत्री किसान का बेटा हो। श्री वल्लभ भाई पटेल ने अपना बाल्यकाल अपने पिता श्री झबेर भाई पटेल के साथ हरे-भरे खेतों के बीच बिताया था। उसने बचपन में ही यह अनुभव कर लिया था कि देश के इस विशाल वर्ग को किन-किन कठिन परिस्थितियों में जीवन बिताना पड़ता है। बैरिस्टर होकर लंदन से लौटने के पश्चात् वह अहमदाबाद में जम गये और कुछ ही दिनों में प्रमुख बैरिस्टरों में गिने जाने लगे; किन्तु देश के किसाल उनकी दृष्टि से कभी भी ओझल नहीं हुए। जब भी उन्हें अवसर मिलता, वे गाँवों में जाते और किसानों की दुःख-दर्द भरी कहानी सुनकर सहानुभूति दिखलाया करते थे।

महात्मा गाँधी इससे पहले ही स्वदेश आ चुके थे और वे अहमदाबाद में ही साबरमती नदी के किनारे आश्रम बनाकर

रहने लगे थे। महात्मा गांधी उन दिनों गुजरात-क्लब में इसी लिए चले जाते ताकि राजनीतिक कार्य के लिये उन्हें कुछ साथी मिल सकें अतः सरदार पटेल पर उनकी दृष्टि पड़ना स्वाभाविक था। इस प्रकार १६१६ में वे महात्मा गाँधी के सम्पर्क में आये। सरदार पटेल हवा में उड़ने वाले तिनके नहीं थे जो एकाएक किसी भावना-वश गांधी जी के सहयोगी बन जाते। जब उन्होंने गाँधी जी के कार्यों में सचाई, हृदय में अनुभूति और आँखों में दृढ़निष्ठा की ज्योति देखी, तब वे उनके साथ वैसी ही अड़िग भावना के साथ हो गये। १६१७ में खेड़ा सत्याग्रह, १६२३ में नागपुर का झण्डा-सत्याग्रह, १६२८ में बारदोली लगान-बन्दी सत्याग्रह में सरदार पटेल ने दृढ़तापूर्वक कार्य किया और सफलता प्राप्त की। कोई भी कठिनाई, कोई भी भय भारतमाता के इस वरद-पुत्र को अपने निश्चय से विचलित नहीं कर सकता था। गांधी जी जब तक जीवित रहे सरदार पटेल ने सदैव उनके दाहिने हाथ के रूप में काम किया, बारदोली में असाधारण सफलता प्राप्त करने के बाद जब महात्मा जी ने 'सरदार' शब्द से उनका अभिनन्दन किया तभी से वे सार देश के सरदार हो गये।

सरदार पटेल में ऐसे कई गुण थे, जो अन्य नेताओं से उनका भिन्न स्थान निश्चित करने वाले हैं। वह अधिक बोलने से सदा ही घृणा करते रहे और उसकी अपेक्षा कार्य को अधिक महत्व देते रहे। उनमें संगठन और संचालन की अद्भुत क्षमता थी। वे चुनौती स्वीकार कर सकते थे किन्तु असीम साक्षी होते हुए भी वह उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा में असा-

धारण धैर्य का परिचय दिया करते थे। बारदोली का सत्याग्रह जिन दिनों प्रारम्भ किया गया था उन दिनों असहयोग आन्दोलन दब जाने के कारण भारत के नेता कौंसिलों की ओर दौड़ रहे थे और राजनीतिक स्फूर्ति यहीं तक सीमित रह गयी थी। ऐसे कठिन समय में सरदार पटेल ने इस सत्याग्रह का संचालन किया और सफलता प्राप्त करके दिखायी। उनके संगठन और कार्य संचालन की परीक्षा उस समय हुई जब कांग्रेस ने १८३५ में चुनाव में भाग लेने का निश्चय किया। इस कार्य के लिये जिम्मेदार कांग्रेस पार्लियामेंट उपसमिति के प्रधान पद पर उन्हें चुना गया। यह सब जानते हैं कि उस समय सारे देश में निर्वाचन के सम्बन्ध में जिस संगठन के साथ धुआँधार आन्दोलन हुआ था वह सरदार पटेल के कौशल का ही परिणाम था। इस निर्वाचन में भारत के ११ प्रान्तों में से ७ प्रान्तों में कांग्रेस को बहुमत मिला था और कांग्रेस ने अपनी शर्तों पर प्रान्तीय मन्त्रिमण्डलों का दायित्व सम्हाला था। यह कहना अनावश्यक न होगा कि भारत में ब्रिटिश सिंह के पैने दाँत उसी दिन उखाड़े गये थे जिस दिन सात प्रान्तों में मन्त्रिमण्डल बना था और इसका सारा श्रेय सरदार पटेल के सफल नेतृत्व को ही दिया जा सकता है।

संगठन और संचालन के इस विशिष्ट गुण की उससे भी अधिक कड़ी परीक्षा तब हुई जब भारत स्वाधीन हो गया और अंगरेज भारत की रियासतों के रूप में ५६२ शेरों को खुला छोड़कर चला गया। अंग्रेजों के मन में कल्पना थी कि भारत के नेता इन रियासतों को न सम्हाल सकेंगे और भारत में फिर

उनका पैर जम जायेगा। सरदार पटेल पर गृह-विभाग का भारी उत्तरदायित्व था और यह उनका अदम्य साहस, अद्भुत कौशल एवं प्रखर देशभक्ति ही थी जो रियासतों के राजाओं को यह समझाने में सफल हुई कि देश को बचाने का एकमेव मार्ग उनका भारत में विलीनीकरण है। जिस लौह-पुरुष ने रक्तपात-शून्य क्रान्ति सफलता के साथ पूरी की उसकी तुलना जर्मनी के प्रिंस बिस्मार्क से ही की जा सकती है।

रियासतों को भारत संघ में मिलाने और उनकी एकाइयाँ बनाने में सरदार पटेल ने राजाओं की सद्भावना को सदैव ही महत्व दिया। जूनागढ़ और भूपाल जैसी रियासतों को भी आपने अपने कौशल एवं बुद्धि-चातुर्य द्वारा भारत में मिलने के लिये विवश कर दिया। सरदार पटेल के सामने जब हैदराबाद की समस्या आई और वहाँ के नवाब ने स्वतन्त्र रहना चाहा तथा उसकी आँखें पाकिस्तान एवं विदेशों की ओर लगीं तो वह चिन्तातुर नहीं हुए और न ही वे कर्तव्य-विमुख होकर हाथ पर-हाथ धर कर बैठे; अपितु उचित अवसर की प्रतीक्षा में रहे। जब कासिम रिज़वी ने हैदराबाद में आतंक मचा दिया और वहाँ की शासन-व्यवस्था शिथिल हो गई तथा रिज़वी ने दिल्ली के लाल किले पर आसफजाही झण्डे को लहराने का नारा लगाया तो सरदार पटेल ने उसे तत्काल ही दबाने का निश्चय किया और पुलिस-ऐक्शन द्वारा हैदराबाद को भारत में मिलाकर ही चैन लिया। सरदार पटेल का यह अन्तिम अभियान पूर्ण रूप से सफल रहा। नवाब हैदराबाद को घुटने टेक कर अपने पूर्व कार्यों के लिये क्षमा माँगनी पड़ी तथा नवाब

ने हैदराबाद को भारत में मिलाने वाले कागज पर हस्ताक्षर किये। भारत संघ में हैदराबाद का विलीनीकरण सरदार पटेल के अदम्य उत्साह एवं साहस का परिणाम है।

सरदार पटेल बड़े गम्भीर विचारों के धनी थे। उनके हृदय में क्या छिपा है, यह बात कोई भी नहीं जान पाता था। बाहर से कठोर दिखाई देने वाले सरदार का हृदय कमल से भी अधिक कोमल था। उनके जीवन की कई एक घटनाओं से से यह सिद्ध होता है कि वह अत्यन्त निरभिमानी थे। एक बार की बात है कि कलकत्ता में सम्पन्न होने वाले कांग्रेस अधिवेशन में सरदार पटेल गांधी जी के साथ न जा सके और किसी कारण वश पीछे रह गये। जब वे अन्दर जाने लगे तो द्वार पर खड़े हुए स्वयंसेवक ने उन्हें अन्दर जाने से रोक दिया। इस पर आप उत्तेजित नहीं हुए अपितु अपने डेरे में लौट आए और चादर तान कर सो गए। कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक में जब सरदार न पहुँचे तो उनकी खोज हुई और उन्हें बुलाया गया। सरदार ने आकर जब सारी बात बताई तो सभी नेता खिलखिला कर हँस पड़े।

सरदार पटेल कितने दृढ़ विचारों के थे, यह उस घटना से जाना जा सकता है जबकि वे अहमदाबाद के न्यायालय में किसी अभियोग पर वाद-विवाद कर रहे थे। इसी बीच उन्हें एक तार मिला। यह तार उनकी जीवन-सहचरी की मृत्यु का था। सरदार पटेल ने तार पढ़ा, किन्तु वे उससे विचलित न हुए और न ही बहस बन्द की, अपितु जब बहस समाप्त हुई तो मित्रों को पता चला कि घटना क्या हुई है।

सरदार पटेल आज हमारे बीच में नहीं हैं। वह १५ दिसम्बर १९५० को समस्त भारतवासियों को बिलखता छोड़कर स्वर्ग सिधार गये। किन्तु उनके द्वारा किये गए कार्य हमारे सामने हैं और अपने कार्यों द्वारा वे भारतवासियों के हृदय में अपना विशिष्ट स्थान बना गये हैं। आज भी देश के समक्ष जब कोई गम्भीर समस्या उग्र रूप धारण कर लेती है तो बरबस सरदार की याद आ जाती है और मन कह उठता है कि यदि आज सरदार जीवित होते तो यह समस्या जटिल न बनती और वे उसका उचित समाधान निकालते। सरदार पटेल ने जिस कार्य को अपने हाथ में लिया उसे हल करके ही छोड़ा। भारत को सुदृढ़ बनाने में उनका योगदान सदैव अमर रहेगा।

सरदार पटेल की मृत्यु से सारे देश में शोक की लहर छा गई थी। इस अवसर पर प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने दुःख-भरे स्वर में कहा था कि "आज मैं साहसहीन हो गया हूँ और अपने-आपको निर्बल पा रहा हूँ। सरदार मेरे परम सहयोगी थे। देश को स्वाधीन कराने के प्रयत्नों में वे मेरे साथ रहे और अब भारत को सुदृढ़ बनाने में भी उन्होंने पूरा-पूरा साथ दिया। उनका अभाव मुझे सदैव खटकता रहेगा।"

सरदार पटेल भारतीय संस्कृति के परम अनुरागी थे। हिन्दी को राष्ट्रभाषा पद पर आसीन कराने और आकाशवाणी में हिन्दी को स्थान दिलाने में उनका प्रमुख हाथ था। उनके ही प्रयत्नों से सोमनाथ मन्दिर का जीर्णोद्धार हुआ था। सरदार पटेल नव-भारत के निर्माता के रूप में सदैव स्मरण किये जाएँगे।

★

राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद सादगी और सरलता की प्रतिमूर्ति है। देश के किसान और मजदूर उनमें अपनी प्रति-मूर्ति देखते हैं। देश का सबसे बड़ा सम्मान जितना अनायास और बिना माँगे आपको मिला, शायद ही किसी को मिला हो। वे दूसरी बार देश के राष्ट्रपति निर्वाचित हुए हैं। पहली बार संविधान सभा ने उन्हें राष्ट्रपति नियुक्त किया था और दोबारा विधिवत् चुनाव लड़ कर निर्वाचित हुए हैं। इतिहास में शायद ही कोई ऐसा निर्वाचन हुआ हो जिसमें एक उम्मीदवार के सभी विरोधियों ने निर्दिष्ट श्रेणी की भावना के साथ चुनाव लड़ा हो। उनके मुख्य विरोधी डा० के० टी० शाह ने तो एक लम्बा वक्तव्य देकर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक समझा कि "मैंने सपने में भी कभी डा० राजेन्द्रप्रसाद का विरोध करने की न सोची होती। लेकिन मैं और मेरे मित्र इस सिद्धान्त को स्पष्ट कर देना चाहते थे कि राष्ट्रपति का

पद किसी एक राजनैतिक दल का उपहार नहीं है और न हो होना चाहिए। उनके विरोधियों में न तो किसी को उनके विरुद्ध जीतने की आशा थी और न ही वास्तव में उनके विरुद्ध जीतना चाहता था।" किसी भी व्यक्ति के लिए इससे बड़ी श्रद्धांजलि और क्या हो सकती है। यदि कांग्रेस ने उन्हें अपना उम्मीदवार न बनाया होता तो स्वतन्त्र रूप में वे शायद निर्विरोध से चुने जाते।

डा० राजेन्द्रप्रसाद का जन्म बिहार में सारन जिले के जीरादेई नामक ग्राम में एक मध्यवर्गीय धार्मिक मनोवृति के कायस्थ-परिवार में हुआ था। उनके पूर्वज पढ़ने-पढ़ाने का काम करते थे। बचपन में ही वे मुस्लिम संस्कृति के सम्पर्क में आये। अपनी आत्म-कथा में उन्होंने लिखा है बचपन में मैं मुस्लिम त्यौहार और विशेषतः ताजिया देखकर उल्लास से खिल उठता था और सभी लोग धार्मिक भेदभाव भूलकर उसमें भाग लेते थे। एक मौलवी साहब ने उन्हें अक्षर-ज्ञान कराया। बचपन में ही उन्होंने उर्दू के साथ फारसी पढ़ना शुरू किया और वास्तव में फारसी ही के कारण वे विश्व-विद्यालय की परीक्षाओं में सदैव प्रथम रहे। मैट्रिक में उन्होंने रिकार्ड स्थापित किया। उसे केवल दो वर्ष पहले एक छात्र ने तोड़ा। कहा जाता है कि एम० ए० में उनकी 'थीसिस' देखकर परीक्षक ने लिखा था कि परीक्षार्थी परीक्षक से अधिक योग्य है।

मुस्लिम त्यौहार देखकर राजेन्द्र बाबू के मन में इस्लाम के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। फारसी के अध्ययन से उन्होंने

भारतीय इतिहास में मुस्लिम काल की कला की प्रशंसा और आदर करना सीखा। पाश्चात्य संस्कृति से भी वे विलग न रहे। आठ वर्ष की उम्र में उन्हें एक एंग्लो वर्नाक्यूलर स्कूल में पढ़ने के लिए भेजा गया; जहाँ वे पाश्चात्य विचारों और संस्थाओं के सम्पर्क में आये। अध्ययन के सिलसिले में उन्हें वर्षों कलकत्ते में रहना पड़ा, जो पाश्चात्य संस्कृति का केन्द्र था। जब वे स्कूल में ही थे तो उनकी बिरादरी के कुछ लोगों ने डा० गणेशप्रसाद के सम्मान में एक भोज दिया। डा० गणेशप्रसाद उच्च अध्ययन के लिए यूरोप जाकर आये थे। बिरादरी के अधिकांश लोग समुद्र-यात्रा करने के लिए उनका पूर्ण बहिष्कार करने के पक्ष में थे, लेकिन राजेन्द्र बाबू को यह बात गलत मालूम हुई। उनका मत था कि ज्ञान की खोज में व्यक्ति को संसार के किसी भी कोने में जाने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। वे अपने भाई के साथ भोज में सम्मिलित हुए और उन्होंने जमकर समाज का विरोध सहन किया।

उच्च अध्ययन के लिए राजेन्द्र बाबू कलकत्ता गये। वहाँ उन्हें अंग्रेजी साहित्य और जर्मन दर्शन का गहन अध्ययन करने का अवसर मिला। कलकत्ता उन दिनों राष्ट्रीय आन्दोलन का केन्द्र था और सम्भवतः राजेन्द्र बाबू उससे प्रभावित हुए बिना न रहे। इसी उद्देश्य से उन्होंने 'बिहार छात्र सम्मेलन' का भी आयोजन किया। उन्हीं दिनों उन्होंने समझ लिया था कि अपनी मातृभाषा ही भारतीय जनता को एक सूत्र में बाँध सकती है और उन्होंने हिन्दी के प्रसार तथा विकास के लिए देश-व्यापी आन्दोलन किया।

१९१७ में राजेन्द्र बाबू को सर्वप्रथम गांधी जी के सम्पर्क में आने का ऐतिहासिक अवसर मिला। गांधी जी एक ग्रामीण कृषक के निमन्त्रण पर नील के बागानों के अंग्रेज मालिकों के शोषण से कृषकों और मज़दूरों को मुक्त कराने के लिए बिहार गये थे। गांधी जी की इस यात्रा को बृटिश सरकार द्वारा भारत में आर्थिक शोषण के विरुद्ध शुरू किये गये आन्दोलन का प्रारम्भ कह सकते हैं। राजेन्द्र बाबू ने भी इस आन्दोलन में इतने मनोयोग से भाग लिया कि लोग उन्हें बिहार का गांधी कहने लगे। सन् १९२१ में जब गांधी जी ने अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद के विरुद्ध युद्ध का बिगुल बजाया तो राजेन्द्र बाबू भौतिक महत्ता और सम्मान का सबसे बड़ा समझा जाने वाला पथ अपनी वकालत छोड़कर आन्दोलन में कूद पड़े और उस दिन से उनका जीवन साधारण जनता—किसानों और मज़दूरों के अधिकारों और सुख-सुविधाओं के लिए किए गए निरन्तर संघर्ष का प्रतीक बन गया है।

राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद की निस्पृहता के बारे में कहा जाता है कि विश्व में शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जिसके दिल में अपने सम्मानित पद का आकर्षण न हो। उनकी आध्यात्मिकता इतनी बढ़ी हुई है कि शोषण-विहीन गणराज्य की तुलना में व्यक्तिगत सफलता और ख्याति उनके लिए निरर्थक-सी चीज़ हो गई है। उनका व्यक्तित्व अत्यन्त मधुर है; लेकिन व्यक्तित्व की यह मधुरता किसी राजनीतिक की बनावटी मुद्रा नहीं। आध्यात्मिक पूर्णता व्यक्ति की सरल प्रकृति से उत्पन्न होती है। राष्ट्रपति होने के बाद भी वे वैसा

ही सादा जीवन बिताते हैं जैसा कि साधारण आश्रम के सदस्य के रूप में पहले बिताते थे। उन्होंने चरखा कातना सीखा और नियमित रूप से एक घण्टा रोज चरखा कातते हैं। वास्तव में वे अपने कपड़े के लिए आवश्यक सूत स्वयं कात लेते हैं। हिन्दू-मुस्लिम-एकता, छुआछूत के निवारण और ग्रामोद्योग के विकास के लिए उन्होंने अपना सारा जीवन उत्सर्ग कर दिया।

राष्ट्रपति इतनी न्यायशील प्रकृति के व्यक्ति हैं कि किसी भी व्यक्ति या दल के प्रति उनके पक्षपात करने की आशंका ही नहीं की जा सकती। कांग्रेस में जब भी कभी झगड़ा और फूट हुई (जैसे १९३९ में सुभाष बोस और १९४७ में आचार्य कृपलानी के पद-त्याग करने के बाद), तो डा० राजेन्द्रप्रसाद को ही कांग्रेस की बागडोर सौंपी गई; क्योंकि उनके अध्यक्ष होने पर दोनों ही दल सदैव अपने अधिकार सुरक्षित समझते थे। उनके-जैसा व्यक्ति ही राष्ट्रपति पद के लिए उपयुक्त हो सकता है और राष्ट्रपति पद पर उनके रहते हुए भारतीय आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था में ऐसे परिवर्तनों की आशा की जा सकती है जिसमें अन्याय और शोषण का नाम न हो और राज्य की शक्ति जनता की सेवा और उसकी सुख-समृद्धि के विकास में ही लगे।

*

मौलाना आज़ाद देश के उन महापुरुषों में से एक थे जिन का सारा जीवन देश की स्वाधीनता के लिए लड़ने और उस का निर्माण करने में बीता। मौलाना आज़ाद की अनमोल ज़िन्दगी के सुन्दर साल जेल में बीते और देश की आज़ादी के ११-१२ वर्ष तक हमारा मार्ग-दर्शन करके वे देश के निर्माण में लगे रहे। मौलाना आज़ाद एक अपूर्व प्रतिभा के स्वामी थे। विद्या और विनय का इनमें अभूत पूर्व समन्वय था। इस्लाम के एक प्रमुख उपदेशक होते हुए उन्होंने "कुरानशरीफ़" का अनुवाद करके उसे राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत बना दिया। जिन दिनों मौलाना आज़ाद सबसे पहली बार १९२३ में कांग्रेस के प्रेसीडेन्ट बनाये गये थे उस समय इतनी कम उम्र का कोई आदमी इस पद पर नहीं बैठाया गया था। जब पहली बार सन् १९३५ के बाद कांग्रेस कई प्रान्तों में बहुमत में आई और यह निर्णय हुआ कि कांग्रेस अपना मन्त्रिमण्डल बनाये, उस समय इस बात का निर्णय करने के लिए जिन तीन आदमियों को काम सौंपा गया था उनमें मौलाना आज़ाद भी थे। मौलाना

आजाद की अध्यक्षता में सन् १९४२ में 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव पास किया गया था। जब वे अहमदनगर के किले में नज़रबन्द थे उन दिनों उनकी बीवी कलकत्ता में सख्त बीमार थीं। उन दिनों सरकार की तरफ से यह सन्देश भेजा गया कि अगर आप चाहें तो आपको पैरोल पर रिहा किया जा सकता है। किन्तु मौलाना ने यह स्वीकार नहीं किया। यद्यपि वे अपनी बेगम से बहुत ही स्नेह करते थे। जेल से निकलने के बाद भी कांग्रेस का नेतृत्व मौलाना के हाथ में ही रहा। लार्ड वेवल, शिमला कान्फ्रेंस, क्रिप्स मिशन आदि भारत के भाग्य का निपटारा करने वाले जितने मिशन आये उन सबका मार्गदर्शन मौलाना आजाद ने ही किया था और उन्होंने बड़ी तत्परता से अपने काम को निभाया भी।

धर्म और दर्शन के क्षेत्र में उनका पाण्डित्य अपूर्व था। मौ० आज़ाद ने 'अल हिलाल' नाम का पत्र निकाला था जिसमें उन्होंने उर्दू को नई शैली दी थी। अरबी और फारसी के प्रकाण्ड पंडित होते हुए भी मौलाना आज़ाद सरल उर्दू लेखन के पक्षपाती थे।

१४ वर्ष की अवस्था ही में वे शायरी करने लगे थे और एक पत्रिका भी उन्होंने उर्दू-शायरी के परिचय के सम्बन्ध में निकाली थी।

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद का जन्म १८८८ में मक्का में हुआ था। मौलाना आज़ाद के पिता मोहम्मद खैरुद्दीन एक विद्वान् सूफी सन्त थे। उन्होंने अरबी और फारसी में अनेक पुस्तकें लिखी थीं और दिल्ली ही नहीं, बल्कि गुजरात, काठि-

यावाड़, बम्बई और कलकत्ते में भी उनके हज़ारों अनुयायी थे। १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम के बाद दिल्ली पर जब बृटिश फौजों का दोबारा अधिकार हुआ, तब अन्य हज़ारों लोगों की भाँति वह भी दिल्ली छोड़कर चले गए और बाद में मक्का पहुँचे। तुर्की के सुलतान अब्दुल मजीद ने मोहम्मद खैरुद्दीन की बहुत ख्याति सुनी थी। उन्होंने सूफी विद्वान् को कुसतुनतुनिया आने का निमंत्रण दिया। सुलतान की कृपा-दृष्टि के फलस्वरूप मोहम्मद खैरुद्दीन की अनेक पुस्तकें काहिरा से प्रकाशित हुईं। कुसतुनतुनिया से लौटने पर उन्होंने मक्का की विख्यात नहर-जुबेदा के निर्माण के लिए भारत में अपने अनुयायियों और मित्रों से धन एकत्र करने में सहायता की।

अपने अनेक काठियावाड़ी अनुयायियों के अनुरोध पर मोहम्मद खैरुद्दीन १८८० में मक्का से बम्बई लौट आये। अगले १२ वर्षों में उन्होंने अनेक बार मक्का की यात्रा की होगी।

मोहम्मद खैरुद्दीन का विवाह उस समय के प्रसिद्ध विद्वान् और सन्त शेख मोहम्मद ज़हीर की भान्जी से मक्का में हुआ था। मक्का में ही १८८८ में अबुल कलाम का जन्म हुआ और वहीं १८९८ तक उनका बचपन बीता। बाद में उनके पिता कलकत्ता में बस गए।

कलकत्ता में अबुल कलाम की शिक्षा-दीक्षा घर पर हुई। शिक्षा में उनकी प्रगति अद्‌भुत और असाधारण रही। 'दरसे निज़ामी" अरबी और फारसी में भाषा, दर्शन, तर्क, गणित और भूगोल तथा इतिहास का सम्पूर्ण पाठ्यक्रम है, जिसे पूरा करने में अच्छे छात्र को दस वर्ष और सामान्य छात्र को १४ वर्ष लगते

हैं। अबुल कलाम ने यह पाठ्यक्रम ४ वर्ष में ही पूरा कर लिया और १४ वर्ष की अवस्था में ही वह छात्र-अध्यापक हो गये। १९०५ में वह मिस्र के प्रसिद्ध अल-अजहर विश्व-विद्यालय में उच्च शिक्षा पाने के लिए काहिरा गये। १९०७ में जब वह कलकत्ता लौटे तब बंगाल में राजनीतिक जागृति की लहर आई हुई थी। इस नई जागृति का अबुल कलाम पर भी प्रभाव पड़ा। २४ वर्ष की अवस्था में ही उन्हें मुस्लिम-जगत् मौलाना मानने लगा था। उन्होंने एक उर्दू साप्ताहिक भी प्रकाशित करना आरम्भ किया, परन्तु १९१४ में बृटिश सरकार ने इस पत्र का प्रकाशन बन्द कर दिया और मौलाना आज़ाद को रांची में नज़रबंद कर दिया। १९२० में रिहा होने पर मौलाना आज़ाद गांधी जी के सम्पर्क में आये और उन्होंने खिलाफ़त तथा असहयोग आन्दोलन में बढ़-चढ़ कर भाग लिया। इस पर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और दो साल की कैद की सज़ा दी गई। १९२३ में मौलाना आज़ाद दिल्ली में कांग्रेस के विशेष अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गये। १९३० में वह फिर कांग्रेस के अध्यक्ष बने। १९३० व '३२ के सविनय अवज्ञा आन्दोलन में मौलाना आज़ाद अनेक बार जेल गये। १९४० में वह एक बार फिर कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए और इस पद पर १९४६ तक रहे। 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के दौरान में अन्य कांग्रेसी नेताओं के साथ उन्हें भी १९४२ में गिरफ़्तार कर लिया गया और जून १९४५ में अहमदनगर जेल से रिहा किया गया। १९४२ में क्रिप्स मिशन और १९३६ में बृटिश मंत्रि-मण्डल से कांग्रेस की जो बातचीत

हुई उसमें मौलाना आजाद कांग्रेस के मुख्य प्रवक्ता रहे।

जनवरी १९४७ मे श्री आसफअली के वाशिंगटन में भारत का राजदूत नियुक्त किये जाने पर, मौलाना आजाद अन्तरिम सरकार मे शामिल हुए। वह शिक्षा-मन्त्री बनाये गये और मई १९५२ में उन्हे प्राकृतिक साधन तथा वैज्ञानिक अनुसंधान विभाग भी सौप दिया गया। १९५७ के आम चुनाव में मौलाना आजाद पजाब के गुडगाव चुनाव-क्षेत्र से लोकसभा के सदस्य चुने गये और अपने जीवन के अन्तिम क्षणो तक शिक्षा एवं वैज्ञानिक अनुसंधान मंत्रालय उन्ही के हाथ मे रहा। २२ फरवरी १९५८ को हृदय की गति अवरुद्ध हो जाने से आपका देहावसान हो गया।

मौलाना ने अपने ग्रन्थों से सब पर जो अमिट छाप छोड़ी, उसके बारे में यूसुफ मेहरअली ने लिखा है : "उन्होने पूर्व और पश्चिम के दर्शनों का इतनी गहराई से अध्ययन किया है कि उनकी कलम से भारत ही नही अन्य देशों के स्वतन्त्रता आन्दोलनों को भी प्रेरणा मिली है।

प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू लगभग ६८ वर्ष के होने पर भो युवा हैं और उनमें वीरोचित उत्साह ज्यों-का-त्यों विद्यमान है। वे १८ घण्टे तक निरन्तर काम करने पर भी शिथिलता अनुभव नहीं करते तथा अपने जीवन में प्रसन्नता के साथ कठिन-से-कठिन समस्याओं का सामना करते हुए कार्य कर रहे हैं। पिछले १० वर्षों से वे प्रधान मन्त्री के नाते देश का कार्य कर रहे हैं और जिस उत्साह एवं लगन से उन्होंने भारत को स्वाधीनता दिलाने का कार्य किया, उससे भी कहीं अधिक देश को समृद्ध बनाने एवं विदेशों में भारत का मान बढ़ाने के कार्य में वे लगे हुए हैं। संसार में कोई ऐसा विरला ही नेता होगा जो जनता एवं शासन दोनों क्षेत्रों में इतना आदर-मान प्राप्त कर सका हो; किन्तु श्री नेहरू दोनों क्षेत्रों में समान ख्याति प्राप्त किये हुए हैं। प्रधान मन्त्री श्री नेहरू अपने देशवासियों को सुखी देखने और अपने देश का सम्मान बढ़ाने के लिए सदैव चिन्तित रहते हैं। उन्होंने एक अवसर पर कहा था कि "रूस और चीन अपने देश में समृद्धि की गंगा लाने के लिये बहुत कष्ट और श्रम कर रहे हैं। हम भारत-

वासियों को भी देश का सम्मान बढ़ाने के लिये कठिन-से-कठिन परिश्रम करना चाहिये और इससे कभी भी नहीं घबराना चाहिये।" यही कारण है कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने श्री जवाहरलाल नेहरू के सम्बन्ध में कहा था कि "जवाहरलाल तो रत्न है। उसकी सत्यशीलता सन्देह से परे है। राष्ट्र उसके हाथों में सुरक्षित है। धोखेबाजी किसे कहते हैं, वह यह नहीं जानते। मुझे विश्वास है कि वह कभी किसी को धोखा नहीं दे सकते।" जवाहरलाल जी ने अपने व्यवहार और कार्य से महात्मा गांधी के इन वचनों को पूरा करके दिखाया। आज जितना सम्मान देशवासियों और साथियों से श्री नेहरू को प्राप्त है, वह सराहनीय है।

एक अमेरिकन लेखक ने श्री नेहरू के विषय में एक बार लिखा था कि 'वर्तमान समय में श्री जवाहरलाल नेहरू संसार भर के नेताओं में सबसे अधिक प्रजातन्त्रवादी नेता हैं।' इसी प्रकार ब्रिटेन-निवासी श्री फेनर ब्रोकर ने लिखा है कि "हम लोगों में से कई तो उन्हें दुनिया का सबसे बड़ा राजनीतिज्ञ मानते हैं। उन्होंने दुनिया की दो-तिहाई आबादी का प्रेम पा लिया है और बाकी एक-तिहाई भाग सफेद लोगों का है और उसमें से भी लाखों उनके प्रिय हैं। दुनिया के किसी आदमी को जितने लोग जानते हैं उनसे लाखों-करोड़ों अधिक लोग जवाहरलाल नेहरू के प्रशंसक हैं।"

श्री जवाहरलाल नेहरू का जन्म १४ नवम्बर १८८९ में प्रयाग के एक प्रतिष्ठित काश्मीरी ब्राह्मण-परिवार में हुआ। आपके पूर्वज लगभग दो शताब्दी पूर्व काश्मीर से दिल्ली आये

थे और दिल्ली के बादशाह फर्रुखसियर के शासन-काल में एक सरकारी पद पर काम करते थे। इनके पूर्वज पं० राज कौल को बादशाह ने पूरी सुविधा दी थी और ये उन दिनों नहर शहादत खाँ पर रहते थे। इसलिये धीरे-धीरे उनका नाम नहर पर रहने के कारण नेहरू हो गया। इसी तरह से पंडित जी के पूर्वज पं० लक्ष्मीनारायण नेहरू ईस्ट इंडिया कम्पनी की ओर से वकील नियुक्त हुए थे और इनके एक अन्य वंशधर दिल्ली में शहर-कोतवाल थे। जिन दिनों मुगल वंश नष्ट हो गया तब नेहरू-परिवार भी दिल्ली छोड़कर आगरा चला गया और फिर कालान्तर में प्रयाग में जाकर बस गया। जब पंडित जवाहरलाल नेहरू का जन्म हुआ तब अपने परिवार में ये अकेले थे। पण्डित नेहरू बचपन से ही चंचल थे। जब ये घर की चीजें इधर-उधर रख देते थे तब इनके स्वर्गीय पिता पंडित मोतीलाल नेहरू बड़े अप्रसन्न होते थे। बचपन में श्री जवाहर लाल जी को मुंशी मुबारकअली किस्से और कहानियाँ सुनाया करते थे और इसी प्रकार पण्डित नेहरू की चाची इन्हें धार्मिक कहानियाँ सुनाया करती थी। पढ़ने के लिए श्री नेहरू को जिस यूरोपियन अध्यापक की देख-रेख में छोड़ा गया, उनका नाम मिस्टर ब्रुक्स था जिनका इन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। संस्कृत हिन्दी पढ़ाने के लिए भी एक पण्डित रखे गये, किन्तु वे श्री नेहरू को प्रभावित नहीं कर सके। बचपन से ही समाचार-पत्र पढ़ने और युद्धों के समाचार पढ़ने में इन्हें आनन्द आता था। जब ये भारतीयों के प्रति अंग्रेजों के अपमानपूर्ण व्यवहार की कहानी सुनते, तब इनका हृदय क्रोध से भर उठता था। यह

इन्होंने स्वयं अपनी आत्म-कथा में लिखा है। सन् १६०५ में जब श्री जवाहरलाल जी १५ वर्ष के थे तब विदेश में शिक्षा के लिये हेरो विश्वविद्यालय भेजे गये। लगभग दो वर्ष के बाद वे केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में पढ़ने लगे। यहाँ आप तीन वर्ष तक पढ़े। पढ़ने के विषयों में साहित्य, इतिहास, राजनीति तथा अर्थशास्त्र एवं प्राकृतिक विज्ञान था। विश्वविद्यालय की वाद-विवाद गोष्ठियों में भी आप भाग लेते थे। आपने श्री विपिन-चन्द्रपाल, गोपालकृष्ण गोखले और लाला लाजपतराय के भाषण सुने थे। जिन दिनों जवाहरलाल जी कैम्ब्रिज विश्व-विद्यालय के छात्र थे उन दिनों उन्होंने अपने जीवन का ध्येय वकालत बनाया और उसके लिये बैरिस्ट्री पास की। सन् १६१२ में जवाहरलाल जी बैरिस्ट्री पास करके भारत लौटे और उसी समय पटना के निकट कांग्रेस के अधिवेशन में एक प्रतिनिधि के रूप में गये। प्रयाग में रहकर आप वकालत करने लगे, किन्तु इन पर देश के बदलते हुए रुख का पूरा असर पड़ा। उन दिनों एक और लोकमान्य तिलक 'स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है,' का नारा गुंजायमान कर रहे थे, दूसरी ओर श्रीमती ऐनीबेसेंट का आन्दोलन चल रहा था। सबसे पहले १६१५ में एक सार्वजनिक सभा में सरकार के एक गला-घोंट कानून के विरोध में अपना भाषण दिया। १६१६ में सबसे पहले आप महात्मा गांधी से लखनऊ में मिले और गाँधी जी का उन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। उन्हीं दिनों श्री जवाहरलाल जी राजनीति की ओर आने लगे। सन् १६२१ में रायबरेली के किसानों की संकटपूर्ण स्थिति में आपने सहयोग

दिया और उसके बाद आप पूरी तरह से राजनीति में आ गये और राजनीति के गहरे दलदल में अपने पूरे परिवार के साथ प्रवेश किया।

सरकार की दृष्टि में उनकी यह सब गतिविधि खटक रही थी और प्रिन्स आफ़ वेल्स के भारत-आगमन पर बहिष्कार करने के आन्दोलन में भाग लेने के कारण पिता और पुत्र दोनों बन्दी बना लिये गये। तीन मास के बाद जेल से छूटने के बाद आप गांधी जी से मिलने के लिये अहमदाबाद गये और वहाँ से लौटने पर विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार के आंदोलन में लग गये। इस प्रकार जवाहरलाल जी का सारा जीवन देश की स्वाधीनता के लिये लगा रहा और अन्तरिम सरकार बनने से लेकर अब तक वे भारत के प्रधान मंत्री हैं। उन्होंने अपने शासन-काल में भारत को हर दृष्टि से उन्नत बनाने का काम किया है। एक प्रकार से प्रधान मंत्री श्री नेहरू भारत ही नहीं विश्व के प्राण हैं। विश्व में जितने भी पीड़ित राष्ट्र हैं, वे सदैव उनकी ओर करुणापूर्ण स्नेहमयी दृष्टि से देखा करते हैं। स्वतंत्र भारत की उन्नति के लिये राष्ट्र-पिता महात्मा गाँधी ने जिस तरह रामराज्य का स्वप्न लिया था वही स्वप्न श्री नेहरू के सामने है और वे चाहते हैं कि गरीबों की उन्नति हो, देश के सभी वर्ग एक-दूसरे को अपना भाई मानकर आगे बढ़ें और देहातों की उन्नति हो। बच्चों और महिलाओं की उन्नति के सबसे बड़े हितचिन्तिक भी श्री नेहरू ही हैं। श्री नेहरू में अनन्त गुण हैं। पढ़ने-लिखने के अतिरिक्त प्राकृतिक पर्यटन के वे सबसे बड़े उपासक हैं। उन्हें जब कभी भी अवसर मिलता है, प्रकृति

के अंचल में जाकर उसके सौंदर्य का दर्शन करते रहे हैं। काश्मीर तथा अन्य पर्वत-मालाओं की घाटियों का चप्पा-चप्पा वे देख चुके हैं। घुड़सवारी के अतिरिक्त बर्फ से फिसलना आदि भी उन्हें बड़ा प्रिय है और क्रिकेट के वे कुशल खिलाड़ी भी हैं। दो वर्ष पूर्व पार्लियामेंट के सदस्यों की क्रिकेट टीम में उन्होंने जमकर हिस्सा लिया था। जब श्री जवाहरलाल का सम्बन्ध राष्ट्रपिता गाँधी से हुआ और तब उन्होंने अपना सर्वस्व गाँधी जी के चरणों में अर्पित कर दिया। श्री नेहरू ने भारत को स्वाधीन बनाने में गांधी जी के कार्यक्रम को पूरी लगन के साथ पूरा किया। गाँधी जी इनके कार्य से बड़े प्रभावित हुए और कई बार मुक्तकंठ से प्रशंसा भी की। गाँधी जी ने श्री जवाहर लाल नेहरू के बारे में यह भी कहा था कि पण्डित जी को मैं जानता हूँ। अगर उनके पास एक गीला और एक सूखा इस तरह दो बिछोने होंगे तो वे सूखे पर किसी गरीब दुखी को सुलायेंगे और गीला स्वयं ले लेंगे या कसरत करके अपने शरीर को गरम रखेंगे।

श्री जवाहरलाल नेहरू की गणना संसार के बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों में की जाती है, परन्तु दूसरों के समाज उनकी राजनीति में संकुचित भावनाओं का स्थान नहीं है। वे पार्टी-बाजी और राजनीतिक उखाड़-पछाड़ से कोसों दूर हैं। उनमें सौम्यता और सज्जनता कूट-कूट कर भरी हुई है। स्वर्गीय सरदार पटेल ने श्री नेहरू जी के सम्बन्ध में कहा था कि पंडित जी का हृदय शीशे की तरह साफ है। स्वयं सज्जन होने के कारण वे अपने विरोधियों को भी सज्जन समझते हैं। नेहरू जी

जी आडम्बर शून्य हैं। वे समाज और राजनीति आदि से सम्बन्धित सभी कार्यों में आडम्बर के आलोचक हैं। वे प्रत्येक बात को तर्क से पूर्ण बुद्धि की कसौटी पर कसते हैं और जो निष्कर्ष निकलता है उसी को अपने जीवन में प्रयोग में लाते हैं। आँख मींचकर चलना और बिना समझे-बूझे किसी सिद्धांत का समर्थन करना उनके स्वभाव की बात नहीं है।

श्री जवाहरलाल नेहरू राजनीतिक नेता होने के साथ-साथ कुशल लेखक और प्रवक्ता भी हैं। उन्होंने अपना स्थान सर्वश्रेष्ठ दार्शनिकों में बना लिया है। अंग्रेज़ी भाषा के वे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त लेखक हैं, और उनकी बड़े-बड़े विद्वानों ने प्रशंसा की है। उनके द्वारा लिखी गई 'डिस्कवरी आफ इण्डिया', 'मेरी कहानी', 'पिता के पत्र पुत्री के नाम' आदि पुस्तकें संसार की श्रेष्ठ पुस्तकों में गिनी जाती हैं और इनका कई भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। यदि श्री नेहरू राजनीति में न भी पड़ते तो भी वे अपनी प्रतिभा के कारण संसार में प्रसिद्ध होते। महान् वक्ता के रूप में श्री नेहरू देश और विदेश में प्रसिद्ध हैं। उनके भाषण जनता के हृदय पर अपना अमिट प्रभाव डालते हैं जब भी वे कहीं जाते हैं उनका भाषण सुनने और उन्हें देखने की इच्छा से जनता का सागर उमड़ पड़ता है। श्री जवाहरलाल नेहरू समस्त देश का दौरा कर चुके हैं। वे प्रधान मंत्री बनने से कई वर्ष पूर्व वे भारतीय जनता के हृदय-सम्राट बन चुके थे। देश में कांग्रेस का सन्देश घर-घर पहुँचाने वालों में श्री नेहरू का नाम सर्वप्रथम है। १९३७ तथा अन्य अवसरों पर होने वाले चुनावों में श्री नेहरू ने समस्त देश का

दौरा किया और कई सभाओं में भाषण दिया था। श्री जवाहरलाल नेहरू कई बार कांग्रेस के अध्यक्ष बन चुके हैं और इन्हीं की अध्यक्षता में कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करने का प्रस्ताव पास हुआ था।

श्री जवाहरलाल नेहरू द्वितीय महायुद्ध के बाद ही भारतीय राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेने लगे थे। उन्होंने १९१९ में पंजाब के अमृतसर में जलियाँवाला बाग में हुए काण्ड की तीव्र निन्दा की थी। इसी समय महात्मा गाँधी ने इन्हें निकट से देखा और पहचाना। श्री नेहरू ने किसान आंदोलन का नेतृत्व भी किया और उत्तर प्रदेश में किसानों की अवस्था सुधारने का कार्य किया। देश का कार्य करते हुए श्री नेहरू को कई बार यातनायें सहनी पड़ीं; किन्तु वे यातनाओं से घबराये नहीं और स्वाधीनता के लिये लगे रहे। देश के कार्य में श्री नेहरू अकेले ही नहीं आये अपितु इनके साथ इनके पिता श्री मोतीलाल नेहरू, माता स्वरूपरानी, जीवन सहचरी श्रीमती कमला नेहरू तथा बहिन विजयलक्ष्मी ने भी देश की आज़ादी के लिये सब कुछ न्योछावर कर असहयोग आन्दोलन में भाग लिया और विदेशी वस्त्रों की होली जलायी। श्री नेहरू ने देश के लिये महान् त्याग किया। कई बार जेल काटी। निरन्तर जेल, पिता की मृत्यु एवं श्रीमती कमला नेहरू की मृत्यु भी आपको देश-सेवा से विमुख न कर सकी। महात्मा जी की इच्छा थी कि श्री नेहरू उनके राजनीतिक उत्तराधिकारी हों और निःसन्देह श्री नेहरू ने गांधी जी की इच्छा को साकार रूप दिया।

★

विहार प्रान्त ने राजा जनक की पुरातन संस्कृति के विकास से लेकर आजतक न जाने कितने महापुरुषों, नेताओं तथा हुतात्माओं को जन्म दिया है। अजातशत्रु श्री राजेन्द्रप्रसाद विहार के ही पुत्र हैं जो वर्तमान समय में राष्ट्रपति-पद पर सुशोभित होकर भारत का नाम उज्ज्वल कर रहे हैं। बिहार को ही जयप्रकाश नारायण को जन्म देने का गौरव प्राप्त है। कौन जानता था कि एक ग्रामीण वातावरण में पला हुआ किसान बालक, जिसे शहरी सभ्यता में रुचि नहीं और जो अपने सीधे स्वभाव के कारण अपने परिवार में "बऊलजी" अर्थात् भोला-भोला प्रसिद्ध हो, सन् ४२ की क्रांति का संचालन करेगा और राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के आदेश 'करो या मरो' के अनुसार राष्ट्र-जागरण के लिए अनथक परिश्रम करेगा।

सन् ४२ के नेता श्री जयप्रकाश नारायण का जन्म बिहार प्रान्त के सारन जिले के सिताब दिमरा नामक ग्राम में १९०२ में विजयादशमी के शुभ मुहूर्त में हुआ था। पिता की आर्थिक

स्थिति इतनी अच्छी नहीं थी कि इनके बाल्य-जीवन के सम्बन्ध में कोई बढ़ी-चढ़ो बात सुनी जा सके। यह विद्यार्थी-जीवन में होनहार तथा मेधावी छात्र माने जाते थे और विद्यालय में सर्वश्रेष्ठ छात्र के रूप में जयप्रकाश नारायण अध्यापकों के विश्वास-भाजन थे। अपनी कुशाग्र-बुद्धि के कारण मैट्रिक में छात्र-वृत्ति प्राप्त की और कालेज की पढ़ाई प्रारम्भ की। इन्हीं दिनों गांधी जी द्वारा संचालित असहयोग आन्दोलन सारे देश में छा गया। बिहार प्रान्त असहयोग आंदालन से कैसे अछूता रह सकता था। वहाँ भी असहयोग अन्दोलन जोर पकड़ गया। जयप्रकाश नारायण पर भी इसका प्रभाव पड़ा और वे देश की राजनीति में रुचि रखने लगे। गाँधी जी के आंदोलन से प्रभावित होकर आपने भी कालेज का बहिष्कार किया किन्तु उनके मन में अध्ययन की प्रबल लालसा विद्यमान थी। अपना अध्ययन जारी रखने के लिए वे बिहार विद्यापीठ में प्रविष्ट हुए किन्तु आन्दोलन धीमा पड़ जाने तथा आर्थिक अव्यवस्था के कारण विद्यापीठ का कार्य बंद हो गया। श्री जयप्रकाश नारायण के सामने उच्च अध्ययन की लालसा बनी रही। इन्हीं दिनों की बात है कि स्वामी सत्यदेव परिव्राजक अमेरिका से भारत आये थे। उनके भाषणों का श्री जयप्रकाश नारायण के मन पर प्रभाव पड़ा और वे भी उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिए अमेरिका जाने के लिए लालायित हुए; किन्तु घर की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी और परिवार वाले उनके इस विचार के विरुद्ध थे। बिहार के एक प्रमुख नेता बाबू ब्रजकिशोर श्री जयप्रकाश नारायण के विचारों का बड़ा आदर

करते थे उन्होंने अपनी पुत्री प्रभावती का विवाह भी जय-प्रकाश जी से कर दिया और अमेरिका जाने की सुविधा दिला दी।

श्री जयप्रकाश नारायण ने उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका प्रस्थान किया, रास्ते में उन्होंने चीन और जापान की यात्रा की। जब वह अमेरिका पहुँचे तो विश्वविद्यालयों का पाठ्य-क्रम प्रारम्भ हो चुका था और विलम्ब के कारण कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में स्थान नहीं मिला। वहाँ पढ़ाई का कार्यक्रम छः मास तक चलता था और उसके बाद ही प्रवेश मिलने की सम्भावना थी किन्तु सबसे अधिक कठिन समस्या पैसे की थी। इस कार्य के लिए भी जयप्रकाश नारायण ने मज़दूरी करने का निश्चय किया। मजदूरी करते समय इनका परिचय शेरखाँ नामक एक पठान से हुआ। उसे जब इस बात का पता लगा कि इन्होंने असहयोग आंदोलन में भाग लेने के कारण कालेज का बहिष्कार कर दिया है तो वह बहुत प्रभावित हुआ और उसने फलों के बगीचे में काम की व्यवस्था करा दी। श्री जय-प्रकाश नारायण ने लगातार परिश्रम करके ८० डालर प्रति मास बचाया और छः मास के बाद पढ़ाई आरम्भ की, किन्तु अर्थ की समस्या उनके सामने सदैव भयंकर रूप में खड़ी रहती, फलस्वरूप छः मास पढ़ाई और छः मास मज़दूरी करके उन्होंने पढ़ाई जारी रखी और ओहियो विश्वविद्यालय से विज्ञान में एम. ए. करने का निश्चय किया। विज्ञान में रुचि उनकी पहले से ही थी और वे चाहते थे कि विज्ञान की उच्चतम शिक्षा प्राप्त करके देश की सेवा की जाय। विज्ञान की शिक्षा के

साथ-साथ आपने गणित, भौतिक रसायन, ज्योतिष, भूगर्भशास्त्र तथा खगोल विद्या का अध्ययन किया। श्री जयप्रकाश नारायण ने विदेशी भाषा के रूप में जर्मन भाषा को स्वीकार किया था इसी सिलसिले में जर्मन भाषा के प्रोफेसर से आपका सम्बन्ध हुआ। उसने कहा कि देश-सेवा की इच्छा की पूर्ति विज्ञान द्वारा नहीं हो सकती; क्योंकि विज्ञान पर साम्राज्यवादियों का आधिपत्य है। जब तक देश को विदेशी साम्राज्य से मुक्त नहीं कराया जा सकता तब तक उनका स्वप्न पूरा नहीं हो सकता। उक्त जर्मन प्रोफेसर का भी जयप्रकाश पर गहरा प्रभाव पड़ा। इन्होंने भौतिक विज्ञान का विषय छोड़कर समाज-शास्त्र लिया और पूरी तन्मयता के साथ अध्ययन किया।

माता जी की बीमारी का समाचार सुनकर श्री जयप्रकाश नारायण भारत आ गये और यहाँ आकर देश की राजनीति में भाग लेने लगे। आपको कांग्रेस में लाने का श्रेय प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल को दिया जा सकता है। उन्हीं की प्रेरणा से लाहौर कांग्रेस अधिवेशन में सम्मिलित हुए और मज़दूरों को संगठित करने का कार्यभार सँभाला। श्री जयप्रकाश नारायण को मज़दूर-जीवन का अनुभव भली प्रकार हो चुका था, इस-लिए इन्होंने मज़दूरों की अवस्था सुधारने का भरसक प्रयत्न किया।

श्री जयप्रकाश का राजनीतिक जीवन अदम्य साहस से परिपूर्ण रहा। आप भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के महामंत्री भी बनाये गये। लगातार आठ मास तक यह भारत-व्यापी प्रचार करने पर पुलिस के हाथों गिरफ्तार कर लिए गये। नासिक

जेल में वे समाजवादी विचारों के कांग्रेसी नेताओं के सम्पर्क में आये और १९३३ में रिहाई के बाद तत्काल ही कांग्रेस के अंदर समाजवादी दल की स्थापना की। १९३९ तक आपने अपने दल को सुदृढ़ बनाने और किसानों को संगठित करने का प्रयत्न किया। १९३१ में उन्हें फिर गिरफ्तार कर लिया गया। १९४२ में जब गांधी जी ने 'अंग्रेज़ भारत छोड़ जाओ' का आंदोलन चलाया और "करो या मरो" का संदेश भारतीय जनता के नाम दिया उस समय भी जयप्रकाश नारायण हज़ारीबाग जेल में अपने कुछ साथियों के साथ बंद थे। उनके मन में बाहर निकल कर इस संग्राम में अपना सहयोग देने की इच्छा प्रबल हो रही थी। अन्त में दीवाली के दिन अपने कुल साथियों के साथ जेल से भागने में समर्थ हुए। इसके बाद आपने १९४२ के आंदोलन का नेतृत्व किया और जो चमत्कार दिखाया वह भारतीय इतिहास में अमर है। आपको '४२ का नेता' कहा जाने लगा। लगातार १८ मास के बाद पुलिस ने आपको बन्दी बना लिया और लाहौर किले में भयंकर यातनाएं दीं। कई रात तक सोने नहीं दिया। पुलिस की दृष्टि से यह सबसे खतरनाक व्यक्ति समझे जाते थे। आपने पुलिस की बर्बरता के विरुद्ध अनशन किया। अन्त में आपको आगरा जेल में भेज दिया गया जहाँ से १९४६ में आप डाक्टर राममनोहन लोहिया के साथ रिहा होकर बाहर आये।

श्री जयप्रकाश नारायण समाजवादी पार्टी के स्तम्भ माने जाते थे। कांग्रेस के साथ मतभेद होने के कारण इस पार्टी ने अपना अलग अस्तित्व बनाया। कई वर्षों तक आप समाज-

वादी पार्टी के संगठन का कार्य करते रहे किन्तु कुछ समय से आपने राजनीति से संन्यास ले लिया है और विनोबा भावे के भूदान आंदोलन को सफल बनाने में लगे है। योरुप आदि देशों में भूदान का संदेश देने के लिए आप हाल ही में विदेश गये हैं। स्विटजरलैण्ड से रवाना होते हुए आपने कहा कि आज की समस्याओं के लिए राजनीति नहीं अपितु गहरे आधार-भूत हल की आवश्यकता है और भूदान इसका एक उज्ज्वल उदाहरण है।

संत-सुधारक

★ गुरु नानक

★ स्वामी दयानन्द सरस्वती

★ स्वामी रामतीर्थ

★ भारत-रत्न डा० भगवानदास

★ राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन

★ आचार्य विनोबा भावे

भारतीय एकता के अभ्युत्थान में जिन महापुरुषों का योग रहा है उनमें गुरु नानक प्रमुख स्थान रखते हैं। गुरु नानक उन महापुरुषों में थे जिन्होंने धर्म के नाम पर परस्पर लड़ाई-झगड़ा करने का विरोध किया था। गुरु नानक का जन्म लाहौर के तलवण्डी नामक ग्राम में कार्तिकी पूर्णिमा, विक्रमी सम्वत् १५२६ को हुआ था। इनके पिता श्री कालूचन्द खत्री को जब पुत्र-रत्न होने का समाचार मिला तब वे बड़े प्रसन्न हुए। ज्योतिषी ने जन्म-लग्न देख कर उन्हें यह बताया कि तुम्हारा पुत्र बड़ा यशस्वी, धर्मात्मा तथा प्रभावशाली होगा और इसकी कीर्ति संसार में कल्प-कल्पान्तर तक रहेगी। तब पुत्र का यह भविष्य जानकर इनके पिता फूले न समाये। श्री नानक के जन्म के सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि इनका जन्म अपनी ननिहाल में हुआ था। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि इनकी बड़ी बहन का नाम नानकी था इसलिए इनका नाम नानक रखा गया। इस सम्बन्ध में कोई

स्थिर निर्णय नहीं किया जा सकता, किन्तु जिस स्थान पर गुरु नानक का जन्म हुआ था वह स्थान ननकाना साहब में विद्यमान है और वहाँ प्रतिवर्ष बहुत से यात्री दर्शन करने जाते हैं। गुरु नानक का जन्म से ही विचित्र स्वभाव था। उनके जो हाथ लगता वह माँगने वालों को बाँट देते थे। सात वर्ष की बाल्यावस्था में जब इन्हें स्कूल भेजा गया और जब इन्हें अपने अध्यापक पढ़ने तथा हिसाब लिखने के लिये कहा-सुना करता तब आप उत्तर में ये कहते थे कि इस सांसारिक हिसाब-किताब को जिसने भी पढ़ा वह कठिनाई में रहा, मैं तो परमात्मा की स्तुति पढ़ने आया हूँ और इस सांसारिक विद्या को न पढ़ा कर उन्होंने सच्ची शिक्षा देने के लिए अध्यापक से अनुरोध किया। जब इनके पिता ने संस्कृत के एक पण्डित के पास इन्हें पढ़ने भेजा तब इन्होंने पण्डित जी से उनके द्वारा बनाये गये ओंकार का अर्थ पूछा। पण्डित जी ओंकार का अर्थ नहीं बता सके और फिर नानक ने जो ओंकार का अर्थ बताया, उसे सुनकर पण्डित जी आश्चर्य-चकित रह गये।

गुरु नानक का यह विश्वास था कि पहले मनुष्यों का मूल धर्म एक था, पीछे स्वार्थ वश भिन्न-भिन्न धर्म बन गए। यह मान-कर नानक सभी धर्मों को समान दृष्टि से देखते और सभी वर्ग के लोगों को उपदेश देते थे। गुरु नानक अपने जीवन के प्रारम्भ ही में विरक्त भाव के उपासक थे। नानक एकेश्वर-वादी थे। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि ये कबीर के शिष्य थे और कुछ की धारणा है कि इन्होंने सैयद हुसैन नामक

एक मुसलमान से दीक्षा ली थी । हिन्दू मुसलमानों का धार्मिक सामाजिक विरोध मिटाना ही नानक के धर्म का उद्देश्य था। इस उद्देश्य में उन्होंने सफलता भी पाई थी। नानक हिन्दुओं के अवतारों को मानते थे और मुहम्मद को ईश्वर का दूत समझते थे। श्री नानक बाल्यकाल से ही विरक्त हो गये थे। एक बार यह अपने पिता की आज्ञानुसार नमक खरीदने के लिये गये। जब ये चिड़काना गाँव के पास पहुँचे तब इन्होंने वहाँ कुछ लोगों को भूखा देखा और जो रुपया नमक खरीदने के लिये था वह उनके भोजन पर खर्च कर दिया और खाली हाथ घर पर आ गये। जब पिता ने पूछा कि सौदा कहाँ है ? तब आपने कहा कि पिता जी, मैं सच्चा सौदा करके आया हूँ। इसी प्रकार आपके जीवन की कई घटनायें घटीं जिनमें आपने दीन-दुखियों की सहायता में घर का पैसा लगा दिया था। जब श्री नानक को संसार की घटनाओं से चिंता होती तो वे बस्ती को छोड़कर निर्जन बन में चले जाते थे और वहाँ चिंतन किया करते थे। उनके इस व्यवहार से पिता को दुःख होता था और उन्होंने इन्हें सांसारिक कार्यों में लगाना चाहा। इनका विवाह कर दिया गया। नानक जी ने कुछ समय तक गृहस्थ जीवन बिताया और उनके दो पुत्र हुए, जिनमें श्रीचन्द ने उदासी पंथ चलाया; किन्तु वे कभी भी मोह-माया में नहीं फँसे अपितु अपना जीवन कमल के पत्ते की तरह बिताते थे। जब कभी भी उन्हें अवसर मिलता तब ही वे धर्मोपदेश दिया करते थे। कुछ समय गृहस्थ जीवन बिताने के बाद श्री नानक पूर्ण रूप से विरक्त हो गये और अपने मत का प्रचार करने के लिये

उन्होंने भारत तथा मक्का, मदीना आदि की भी यात्रा की। श्री नानक देवमक्का में थकावट के कारण वहाँ की विख्यात मस्जिद की ओर पैर करके सो गये। किसी मुसलमान काजी ने आकर देखा कि एक साधु फकीर, जिसकी आकृति हिन्दू-सी जान पड़ती है, मस्जिद की ओर पैर करके सो रहा है। उसके क्रोध का पारावार न रहा। उसने गुरु नानक को सोते से जगा कर भला-बुरा कहा और कहने लगा कि जिस ओर मस्जिद-जैसा पवित्र स्थल है तू उस ओर पैर करके सो रहा है। श्री नानक जी ने उससे कहा कि मैं जिधर पैर करता हूँ उधर ही खुदा की दरगाह पाता हूँ। इस घटना के बारे में लोग यह भी कहते सुने जाते हैं कि गुरु नानक जी ने जिस ओर अपना पैर फैलाया उधर ही मस्जिद भी घूमती गई। श्री नानक देव ने मुसलमान और हिन्दू दोनों ही धर्मों के आडम्बरों का विरोध किया था।

गुरुनानक देव उन दिनों विशेषत: पंजाब और सामान्यत: देश में बढ़ रहे मुसलमानों के कृत्यों से अत्यन्त दुखी थे। उन दिनों मुसलमान शासक बलपूर्वक एवं प्रलोभन द्वारा हिन्दुओं को मुसलमान बनने के लिए बाध्य करते थे। इधर हिन्दू धर्म में अन्धविश्वास तथा अन्य कई बुराइयाँ भी आ गई थीं। भाई, भाई का शत्रु बन गया था। श्री नानक ने इन सभी बुराइयों को दूर करने के लिये सिख धर्म की स्थापना की, और ईश्वर एक है, सभी मनुष्य उस परमात्मा की सन्तान हैं, का उपदेश दिया तथा ऊँच नीच का भेद-भाव मिटाने का कार्य किया। गुरु नानक जी कहा करते थे कि इस संसार में जो आया है वह, अवश्य जायगा, इसलिये बैर करना या किसी को दुख पहुँचाना

ठीक नहीं है।

गुरु नानक ने अपना जीवन समाज की बुराइयों को दूर करने में लगाया। उनके शिष्य उन्हें ईश्वर-तुल्य समझते थे। वे अहंकार-रहित थे। उन्होंने सिख धर्म की स्थापना करके उसका प्रसार किया। श्री नानक जी ने अपने मतावलम्बियों को जो भी उपदेश दिया वह अत्यन्त सरल भाषा में था। उनके उपदेशों को उनके ही शिष्य श्री अंददेव ने संगृहीत किया और आज वह पुस्तक 'गुरुग्रंथ साहिब' के नाम से विख्यात है। वह इस सम्प्रदाय की धार्मिक पुस्तक ही नहीं अपितु गुरु-रूप में मानी जाती है।

श्री नानक जी ने यद्यपि स्कूल की शिक्षा प्राप्त नहीं की थी किन्तु वे ज्ञानवान महापुरुष थे। उनके द्वारा कहे गए पदों पर आचरण करके मनुष्य अपना जीवन सफल बना सकता है। गुरु नानक जहाँ के निवासी थे वह तीर्थ बना और विभाजन के बाद वह स्थान पाकिस्तान में आ गया; फिर भी प्रतिवर्ष हजारों सिख इस स्थान की यात्रा के लिए जाते हैं। श्री नानकदेव सिख धर्म के संचालन के एक ऐसे मार्गदर्शक रहे जिसके लिए अन्य धर्मों के व्यक्ति भी उनके कार्यों की सराहना करते हैं। गुरु नानक जी ने अपना शेष जीवन करतारपुर में बिताया जहाँ वे अपना अन्तिम उपदेश देते हुए इस संसार को छोड़ कर परलोकवासी हुए।

गुरु नानक आज इस संसार में नहीं हैं, किन्तु उनके उपदेश आज भी हजारों करोड़ों मानवों को शुद्धाचरण का मार्ग प्रशस्त करते हैं। उनके अनुयायी लाखों की संख्या में पाये जाते हैं।
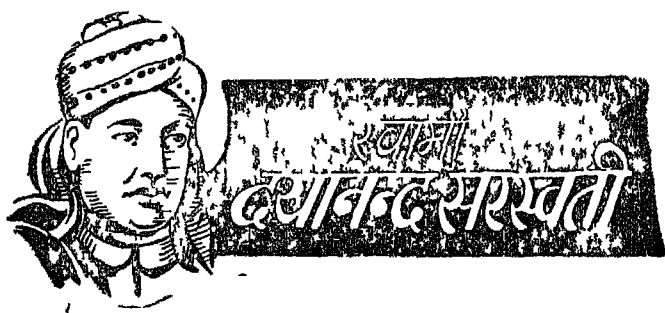
तीस अक्तूबर मंगलवार सन् १८८३ का वह दिन कैसा था जिस दिन राष्ट्र के गौरव, हिन्दू जाति के उद्धारक और आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द ने अपना नश्वर शरीर त्यागा था।

उस दिन दीपावली का दिन था। दीपावली धूम-धाम से मनाई गई थी किन्तु एक ऐसा महान् दीप उस दिन बुझा था जिसके प्रकाश और जिसकी कृपा से देश मे अनेक दीप जल उठे थे। उस महादीप का प्रकाश आज भी देश-विदेश में फैल रहा है। संसार कितना ही बदल जाय, किन्तु देश पर स्वामी दयानन्द के जितने उपकार है, उनसे वह कभी उऋण नही हो सकेगा।

स्वामी दयानन्द ने जहाँ देश में जागृति फैलाई वहाँ राष्ट्रीय भावना का शंख भी फूँका। सब से पहले उन्होने ही विदेशी वस्तुओं का परित्याग करके स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करने का परामर्श दिया। देश मे आज जितनी शिक्षा दिखाई दे रही है, उसमे लगभग आधी शिक्षा का बीजारोपण करने वाले

स्वामी दयानन्द थे। उन्होंने अंग्रेजों से लोहा लेकर भारत की प्राचीनतम शिक्षा-प्रणाली को पुनः जीवित करने के लिए गुरुकुलों की स्थापना कराई। उनमें निःशुल्क शिक्षा का प्रचार बढ़ाया नहीं तो देश में इने-गिने, जो लोग सम्पन्न थे वे ही, शिक्षा ग्रहण कर पाते थे।

स्त्रियों के लिए प्रगति के द्वार रुद्ध थे। सब से पहले इस दिशा में लोहा लेने वाले स्वामी दयानन्द ही थे जिन्होंने स्त्री-शिक्षा के लिए शिक्षा के द्वार खुलवाये। अबला नारियों और अधम जाति के उद्धार में स्वामी दयानन्द ने मार्ग-दर्शन किया।

लगभग ६ करोड़ से अधिक जनसंख्या का भाग हिन्दू जाति से कट कर अलग हो रहा था। उन्हें हिन्दू बने रहने के साधन जुटाने में जो काम स्वामी दयानन्द और आर्य समाज ने किया उसे भुलाया नहीं जा सकता। स्वामी दयानन्द के बाद इन जातियों के लिए जो सुधार या अधिकार मिले थे वे राजनैतिक रहे, किन्तु स्वामी जी पहले ही व्यक्ति थे जिन्होंने पिछली शताब्दी में अपने प्रयत्न से अस्पृश्यता निवारण करके हरिजनों को गले लगाया।

जिन प्रान्तों में स्वामी जी का कार्यक्षेत्र विस्तृत रहा उन प्रदेशों में अधिक कुरीतियों का निवारण हुआ और जो देश पहले ही से अपने को ज्ञान-सम्पन्न मानते रहे उन प्रदेशों में आज भी वहाँ जनता कुरीति और कुसंस्कारों की शिकार हो रही है। आर्यसमाज ने स्वामी दयानन्द के आशीर्वाद को लेकर देश-भर में एक जबरदस्त क्रान्ति की; जिससे देश में जागरण हुआ। देशभक्त बने। देश पर मर मिटने की भावना जगी।

आज कांग्रेस में आर्य समाज के अनुयायियों की संख्या सबसे अधिक है। हरिजन नेता भी प्रायः आज जो कांग्रेस अथवा अन्य दलों में दिखाई देते हैं, उन पर स्वामी दयानन्द और आर्य समाज की कृपा रही है।

देश-भर में संस्कृत भाषा का पुनः प्रचार करने वालों में स्वामी दयानन्द का प्रयत्न स्तुत्य है। उनकी कृपा से ही राष्ट्रभाषा "हिन्दी" को गौरव मिला। पिछली शताब्दी में वे ही एक ऐसे राष्ट्रपुरुष थे जिन्होंने अन्य भाषा-भाषी होकर भी हिन्दी को अपनाया। स्वामी दयानन्द के बाद महात्मा गांधी ने हिन्दी को सम्मानित किया। इस प्रकार स्वामी दयानन्द के सभी वर्गों पर अनेक उपकार हैं। स्वामी दयानन्द ने किसी नवीन मत को जन्म नहीं दिया था वरन् उन्होंने प्राचीन काल से ही ऋषि मुनियों के विचारों को पुनर्जीवित किया। किसे मालूम था कि गुजरात प्रायद्वीप के टंकारा नामक ग्राम में जन्म लेने वाला एक साधारण बालक मूलशंकर किसी दिन इतना बड़ा प्रभावशाली पुरुष सिद्ध होगा, जिससे देश के सभी वर्गों को अपना जीवन बनाने की प्रेरणा मिलेगी जिसका प्रकाश केवल भारत में ही नहीं अपितु दूर देशों में भी फैल जायगा। स्वामी दयानन्द बाल्यकाल से ज्ञान की खोज में घर से निकल पड़े। कहाँ गुजरात और कहाँ उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान—सब जगह पैदल घूम कर स्वामी जी ने राष्ट्र को जगाया। स्वामी जी की प्रतिभा और योग्यता से प्रभावित होकर कई बार उन्हें बड़े-बड़े प्रलोभन दिये गए। किन्तु उन्होंने ज़रा भी परवाह नहीं की। किसी भी लोभ को

मन में विकार उत्पन्न करने का अवसर नहीं दिया।

एक बार उदयपुर के राणा ने स्वामी दयानन्द से कहा कि यदि आप मूर्ति-पूजा का खंडन करना छोड़ दें तो एक-लिंगेश्वर की गद्दी आपको प्रदान की जा सकती है। महाराणा सज्जनसिंह स्वामी जी के परम हितैषी थे, वे चाहते थे कि स्वामी जी जैसे विद्वान् को यहाँ से न जाने दिया जाय। लाखों रुपयों का मोह छोड़ कर स्वामी जी ने उत्तर दिया कि तुम तुच्छ लालच देकर ईश्वर के प्रति द्रोह करना चाहते हो। यह छोटी-सी रियासत और उसके एक साधारण मन्दिर की विरासत क्या है, जो मुझे वेद और ईश्वरीय आज्ञा के तोड़ने पर बाध्य कर सके। पाठकों को यह स्मरण ही होगा कि स्वामी जी ने अपने गुरु स्वामी विरजानन्द सरस्वती को यह वचन दिया था वि वे वेद-प्रचार और ईश्वरीय सत्ता के प्रति आस्था-भावना देश-भर में जगाने का कार्य करेंगे।

स्वामी विरजानन्द उस समय नेत्रहीन थे उनके ज्ञान-चक्षु यह जानते थे कि देश इन दिनों किस विपत्ति में है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति और वैदिक साहित्य किस-किस प्रकार उपेक्षित हो रहा है। वे एक ऐसे शिष्य की खोज में थे जिसे वे शिक्षा देकर उसे जग-उपकार के लिए वचनवद्ध कर सकें। देश के सौभाग्य से स्वामी जी को एक ऐसा शिष्य मिल गया जो योग्य गुरु की खोज में न जाने कब से भटक रहा था। स्वामी जी जैसा शिष्य पाकर स्वामी विरजानन्द का गुरुत्व सार्थक हो गया।

स्वामी दयानन्द ने सर्व-प्रथम बम्बई में आर्य समाज की

स्थापना की। इस समाज की स्थापना अप्रैल १८७५ में की गई। उस समय आर्य समाज के लिए नियम बनाये गए। पहले २२ नियम थे, बाद में वे संक्षिप्त करके १० नियमों में बदल दिये गए।

इन नियमों का यदि प्रत्येक आर्य-जन पालन करे तो देश का महान् उपकार हो सकता है। इन नियमों में स्पष्ट कहा गया है कि संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य धर्म है। "सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य व्यवहार करना चाहिए। प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतंत्र रहें। प्रत्येक को अपनी उन्नति से संतुष्ट नहीं होना चाहिए अपितु दूसरे की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।" इस प्रकार आदर्श आर्य समाज की रचना का स्वप्न स्वामी जी ने देखा था और उसे मूर्त्त रूप दिया। आज इस वृक्ष की शाखाएँ देश-भर में फैली हैं। इस विराट् वृक्ष की छाया से कई करोड़ भारतवासी सुख पाते हैं किन्तु स्वामी जी ने जो स्वप्न एक आदर्श राज्य का लिया था, वह अभी अधूरा है।

स्वामी जी ने अपने को अनेक अग्नि-परीक्षाओं में से खरा उतारा। स्वयं गरल पीकर दूसरों को गरल पीने से बचाया। कई बार घातक आक्रमण सहे, काँच खाया। अनेक अवसरों पर निर्जीव अरण्य में पेड़ों का आश्रय लेकर रात गुजारी। बहुत बार निराहार रह कर भी देश का हितचिन्तन किया। जो संकल्प देश को जगाने का उन्होंने लिया था उससे एक कदम भी पीछे नहीं हटे। जिन दिनों देश में स्वराज्य का कोई नाम भी नहीं जानता था उन दिनों स्वामी

जी ने १८७५ में 'सत्यार्थ-प्रकाश' 'अपने देश में अपना राज्य' का नारा दिया था। स्वामीजी ने कहा था कि विदेशी शासन चाहे ि कतना भी अच्छा क्यों न हो, अपने शासन से अच्छा नहीं हो सकता। इन शब्दों को पढ़कर कोई भी व्यक्ति स्वामी दयानन्द की देश-भक्ति तथा उनकी राष्ट्रीयता का मूल्यांकन कर सकता है। स्वामी दयानन्द का यह नारा बिलकुल लोकमान्य तिलक के इस नारे का समर्थक है कि स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है। स्वामी दयानन्द आये और अपना कार्य करके चले गये। अन्त में उन्हें जोधपुर में विष दे दिया गया। विष देने का भी एक बड़ा कारण था। जोधपुर के महाराज वेश्यानुरक्त थे। स्वामी जी ने वेश्या-गमन के विरुद्ध जब उन्हें फटकारा तो स्वामी जी के इस कथन को उसे वे वेश्या सहन न कर सकी। उसने स्वामी जी को विष दिलवा दिया।

नारियों के सम्मान के लिए स्वामी जी ने गरल पान करके अपना शरीर त्यागा। पर कितने पुरुष और नारियाँ उससे प्रेरणा ले सकें। सारे देश की बात छोड़िए आर्य समाज के सभासद् और सदस्याएँ कितने ऐसे हैं जो स्वामी दयानन्द के उपकार मान कर अपना जीवन उनके चरणों पर चलाने की प्रेरणा ले सके हैं। ठीक दीपावली के दिन जब सारा देश आनन्द से दीपावली मना रहा था उस दिन अजमेर में सन् १८८२ में स्वामी दयानन्द ने नश्वर शरीर को छोड़ा किसी को न बुरा कहा, न भला। 'ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो'—कह कर सदा के लिए आँखें मूँद लीं।

★

स्वामी राम के अद्‌भुत् तथा चमत्कारी जीवन से बहुत कुछ सीखा जा सकता है। भारतीय संस्कृति को अपने देश और विदेश में फैलाने में स्वामी रामतीर्थ का बड़ा हाथ रहा है। वह जहाँ भी गये, अपनी मुस्कान और प्रफुल्ल चितवन से उन्होंने सबको आनन्दित किया।

उनकी निःस्वार्थता तथा निर्भीकता से विरोधी भी उनके अनुयायी हो गये थे। उन्होंने भारत के युवकों के सामने आत्मोत्सर्ग का मार्ग-दर्शन किया, जिसे अपनाकर सभी लोग गौरव प्राप्त कर सकते हैं। उनके द्वारा किये गये अनेक कार्य हमें सदैव प्रेरणा देते रहेंगे।

स्वामी रामतीर्थ के संबंध में महात्मा गांधी ने उन्हें संसार की एक महान् आत्माओं में माना था। आदरणीय पं० मदन मोहन मालवीय जी उन्हे आत्म-चेतना का सबसे बड़ा महात्मा मानते थे।

स्वामी रामतीर्थ भारतीय आकाश में ध्रुवतारे की तरह

महान् सन्त थे। देश के गाढ़े समय में उनकी विभूति हमारे बीच नहीं। यदि आज वे जीवित होते तो विभिन्न दलों से सद्भावना और प्रेम पैदा करने में अवश्य ही महत्वपूर्ण सहयोग देते; पर वे हमारे हृदयों में शाश्वत आत्म-शक्ति के रूप में जीवित हैं। उन्होंने जनता के हृदयों में एक नवीन आनन्द और अपूर्व आत्म-विश्वास को भरा था कि हमारे जीवन का अवसान यथावत् मरुस्थल में नहीं होता। प्रयोगात्मक दर्शन से ओत-प्रोत वे वेदान्ती जीवन के सच्चे आदर्श थे। उन्होंने संसार को दिखा दिया कि इस जीवन में भी आत्मानन्द की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है। सद्भावना, आनन्द और महान् एकता के लिए उनकी प्रेरणा से हम सब प्रयत्नशील हो गए हैं।

पंजाब के गुजराँवाला जिले के मुरारीवाला नामक ग्राम में एक शुद्ध ब्राह्मण परिवार में इस महान् आत्मा का जन्म हुआ था और जन्म से कुछ महीनों के भीतर ही उनकी माता का देहान्त हो गया था। इनके पिता का नाम गोस्वामी हीरानन्द था। आप ब्रह्म-वृत्ति से ही अपने परिवार का भरण-पोषण करते थे। स्वामी जी का पूर्व नाम तीर्थराम था। ज्यों-ज्यों वे बड़े होने लगे, त्यों-त्यों प्रतीत होने लगा कि इस बालक में एक विशेषता, एक दृढ़ता है। बचपन में ही शंख की ध्वनि के प्रति इस शिशु के हृदय में अगाध आकर्षण था। वे जब कभी रोने लगते थे तो शंख की ध्वनि को सुनते ही एकदम मौन हो जाते थे, मानो इसमें उन्हें अपने परवर्ती परमप्रिय 'ओ३म्' महामन्त्र का आभास मिलता था। पाँच-छः

वर्ष की अवस्था में तीर्थराम अपने गाँव के एक मौलवी के पास पढ़ने भेजे गये। मौलवी साहब बालक की कुशाग्र-बुद्धि और शील स्वभाव को देख कर बड़े प्रसन्न थे। जहाँ और बालकों को व्यर्थ के खेल-तमाशों में अपना समय बिता देने में आनन्द आता था, वहाँ यह बालक धर्मशाला में कथा सुनने में अपना समय बिताया करता था।

ग्राम की शिक्षा समाप्त करके तीर्थराम अंग्रेजी पढ़ने के लिए गुजरांवाला गये। इनके पिता ने इन्हें अपने एक मित्र भगत धन्नाराम के हाथों सौंप दिया। भगत जी एक नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे और इनमें कुछ यौगिक शक्तियाँ भी थीं। कहना न होगा कि बालक तीर्थराम की रुचि धार्मिक थी और भगत धन्नाराम का संयोग उनको बहुत ही लाभप्रद सिद्ध हुआ। सच तो यह है कि जिस श्रद्धा से राम ने इन्हें अपना गुरु माना; उस अल्पायु में जिस भक्ति से उन्होंने अपने गुरु के प्रति आत्म-समर्पण किया, यह देखते ही बनता है। उसी गुरु-भक्ति ने इनकी काया पलट दी। उन्नीस-बीस की आयु से ले कर एम० ए० पास करने के बाद प्रोफेसर होने पर भी वे भगत धन्नाराम को अपना गुरु, इष्टदेव और सर्वस्व मानते रहे और फिर यही अटूट भक्ति कालान्तर में कृष्ण-भक्ति के रूप में परिवर्तित हो गई। इनके विद्यार्थी जीवन में एक भी काम ऐसा न होगा जो इन्होंने सतगुरु की आज्ञा के विरुद्ध किया हो। तात्पर्य यह है कि स्वामी राम जो भी कार्य चौबीस घण्टे के भीतर करते, उसकी पूरी-पूरी सूचना नित्य-प्रति अपने गुरुदेव को भेजा करते थे।

गुजराँवाला के चार-पाँच वर्ष के प्रवास के अनन्तर तीर्थराम लाहौर पढ़ने चले गये। यद्यपि इनके पिता अपनी आर्थिक परिस्थिति-वश इन्हें आगे पढ़ाना नहीं चाहते थे, परन्तु वे अपने निश्चय पर अटल थे। गुरु की सहायता और उस परम प्रभु की कृपा से इन्होंने मैट्रिक के बाद एफ० ए०, बी० ए० तथा एम० ए० लाहौर विश्वविद्यालय से पास किया और ऐसी विषम परिस्थितियों में, जिन्हें सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कभी-कभी बेचारे तीर्थराम को एक आना प्रति दिन पर गुजर करनी पड़ती थी। रात्रि में पढ़ने के लिए तेल जुटाने के लिए इन्हें भूखे रह जाना पड़ता था। पर वाह रे भाग्य! धन्य है ऐसे साहस को! यह ठीक ही कहा है—"ईश्वर उन्हें सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करते हैं।" इन पर घोर-से-घोर विपत्ति आई, पर इन्होंने कभी माथे पर बल नहीं आने दिया।

तीर्थराम को सचमुच विद्या का अपूर्व व्यसन था। कोर्स की पुस्तकों के अतिरिक्त ये सैकड़ों बाहर की पुस्तकें पढ़ा करते थे। गणित विषय इन्हें सर्वाधिक प्रिय था। सूर्यास्त से लेकर सूर्योदय तक गणित के प्रश्नों को हल करने में इन्हें समय का पता ही न चलता। ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती गई, त्यों-त्यों यह गणित के साथ-साथ दार्शनिक विषयों में भी विशेष रस लेने लगे। हृदय में भगवान् श्रीकृष्ण की परमभक्ति और आत्मा का स्वरूप उमंगें लेने लगा। आपने अपने इन्हीं वैदान्तिक विचारों का प्रचार करने के लिए 'अलिफ़' नाम से एक मासिक पत्र भी निकाला। अभी प्रोफेसरी करते दो वर्ष भी समाप्त न

हुए थे कि रामतीर्थ घर-बार, स्त्री-पुरुष आदि सब से मुख मोड़ कर संन्यासी हो गये।

स्वामी राम का जीवन राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत था। वे देश-प्रेम और देश-सेवा की सजीव मूर्ति थे। उन्होंने समूचे देश के साथ अपने आपको मिला दिया था। राष्ट्र-धर्म की घोषणा करते हुए उन्होंने स्पष्ट कहा है—"जब तक हम अपने क्षुद्र व्यक्तित्व को देश की विशाल आत्मा से नहीं मिला देते तब तक आत्मा का साक्षात्कार तथा ब्रह्मानुभव की बात कोरी कल्पना मात्र है।" वे कहते थे, "जब राम चलता है, जब राम बोलता है तो सारा भारतवर्ष बोलता है।" उन्होंने अपने व्याख्यानों द्वारा देश में और विदेश में राष्ट्रीय भावना को जिस सुन्दरता से प्रकट किया है, देश-सुधार के उपायों को जिस निर्भीकता से व्यक्त किया है, सचमुच वे स्तुत्य हैं। उनके काम करने का ढंग निराला था। वे कहते थे कि हिमालय की गुफाओं में बैठा हुआ व्यक्ति भी यदि सच्चे हृदय से देश से तादात्म्य अनुभव करता है तो ऐसा हो ही नहीं सकता कि देश में उसकी भावनाओं का प्रसार न हो।

राम की शिक्षा या वेदान्त का पाठ हमें यह सिखाता है कि जीवन में हम उन्नति के शिखर पर अवश्य अपने-आपको देखेंगे। मरने के पश्चात् भी हम अमर ही हैं। किसी ऊँचे स्थल पर और जीवन के अति उच्च शिखर पर मृत्यु हमें ले जाकर रखेगी। परन्तु लोक और परलोक की सफलता के लिए हमें स्वामी रामतीर्थ के विचारों का अध्ययन आज से प्रारम्भ कर देना होगा।

हम उनके जीवन के लक्ष्य और जीवन-सन्देश को सुनने और समझने की चेष्टा करें। हम देख चुके हैं कि दस-बारह वर्ष की आयु में ही उन्होंने ज्ञान की बलिवेदी पर अपने आप को उत्सर्ग कर दिया था। उनके भीतर ज्ञान की अटूट लालसा समाई हुई थी। वे अन्तरंग और बहिरंग—दोनों साधनों से तिल-तिल करके ज्ञान-संचय करने में अतीव सावधान और घोर अध्ययनशील थे। वे कहा करते थे कि आवश्यकता है सुधारकों की, जो दूसरों का नहीं वरन् स्वयं अपना सुधार करें। उनकी नहीं जिन्होंने विश्वविद्यालयों में डिग्रियाँ प्राप्त की हों, वरन् उनकी जिन्होंने अपनी क्षुद्र आत्मा पर विजय पाई हो और जब सचमुच उन्होंने विजय पा ली तब उन्होंने गर्जना की—ऐ संसार के भोले-भाले लोगों! तुम डरते हो? किससे?

ईश्वर से? मूर्ख हो?
मनुष्य हो? कायर हो?
पंचभूतों से? उनका सामना करो।
अपने से? जानो अपने-आपको।
कहो—'अहं ब्रह्मास्मि।'

बस एक शब्द में—'जानो अपने आपको' आत्मज्ञान और आत्म-विश्वास ही उनका एक-मात्र पवित्रतम सन्देश—अजर-अमर संदेश हमारे और मनुष्यमात्र के लिए है। उनका सारा जोर इस बात पर था—पहले अपने स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करो।

भगवान् कृष्ण के इस पवित्र संदेश को मनन कर लो और तब देखो कि तुम जीवन के किस स्थल पर विचर रहे हो—

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्त मध्यानि भारतः
अव्यक्त निधनान्येव तत्र का परिवेदना ॥

राम देश-भक्त थे। उन्होंने यूरोप, जापान, अरब आदि देशों को ब्रह्मविद्या के शस्त्र से परास्त किया। वे मूर्तिमान भारत के आत्म-गौरव थे। किसी ने विद्वत्ता के बल से, किसी ने अहिंसा के बल से, परन्तु स्वामी राम ने विदेशियों को अध्यात्म-विज्ञान के बल पर चकनाचूर किया। वह विदेशों में बता आये कि भारत अब जाग उठा है और अब हम स्वतन्त्र होकर ही रहेंगे और अपनी छीनी हुई सम्पत्ति को लौटा ही लेंगे। स्वामी राम ने बल-विद्या के शस्त्र से उनके हृदयों को बेधा और त्याग के कवच से उनके प्रहारों से स्वयं को बचाया।

राम के यूरोप से लौटते ही एक नवीन हलचल उत्पन्न हो गई। भौतिक संसार के खिलाड़ी नर-नारी राम-ही-राम पुकारते थे। वह था राम जिसने इतनी तीव्र गति से उनके हृदयों पर विजय प्राप्त की। वह कई बार अमरीका के प्लेट-फार्म पर गरज कर कहते थे–"वेदान्त कोई मत या मजहब नहीं। यह एक प्रकाश-गृह है जिसकी आवश्यकता हर एक छात्र, अध्यापक, नर-नारी के रूप में वृद्ध और युवक सबको है। जाने या अनजाने में सफलता के इच्छुक को इसकी शरण लेनी होगी। कोई मत या मजहब उन्नत हो ही नहीं सकता जो वेदान्त के सिद्धान्त का तिरस्कार करता है। जैसे ईश्वर-कल्पना से इस विश्व की उत्पत्ति हुई, उसी प्रकार जीव की सृष्टि का उत्थान जीव के संकल्प से हुआ है।"

ए इंसान ! यदि तू दुनिया को बदलना चाहता है तो अपने- आप को बदल !

*

भारत-रत्न डा० भगवानदास का सारा जीवन बौद्धिक स्वार्थ और परमार्थ के कार्यों से ओत-प्रोत रहा है। इन्होंने भारतीय दर्शन-पद्धति पर विशेष गवेषणा की है और उसके फलस्वरूप उनके दर्शन-सम्बन्धी दर्जनों महत्वपूर्ण ग्रंथ हिन्दी, संस्कृत और अंग्रजी में प्रकाशित हो चुके हैं। दर्शन-साहित्य के अतिरिक्त आपकी प्रतिभा हिन्दी साहित्य में भी प्रकट हुई है। इसका सबसे बड़ा नमूना उनका लिखा गया साहित्य-सम्बन्धी ग्रंथ 'रस-मीमांसा' है। इस ग्रंथ को लिख कर उन्होंने उस समय हिन्दी संसार में एक क्रांति की थी।

डा० भगवानदास बनारस के एक ऐसे सम्पन्न परिवार में १२ जनवरी १८६९ को पैदा हुए थे जिनके यहाँ कभी असर्फियाँ धूप में सुखाई जाती थीं। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा बनारस में ही हुई।

डा० भगवानदास के पिता बाबू माधोदास अपने समय के प्रसिद्ध जमींदार और व्यवसायी थे। इसके साथ ही वह विद्वान् तथा संयमी व्यक्ति थे। यही कारण है कि उनके जीवन का पूरा प्रभाव डा० भगवानदास के ऊपर पड़ा। डा० भगवानदास

की माता बड़े सात्विक विचारों वाली महिला थीं और उनका भारतीय संस्कृति से अटूट प्रेम था। डाक्टर भगवानदास बचपन से ही बड़े मेधावी बालक थे। इन्होंने अपने समय की मैट्रिक परीक्षा १२ वर्ष की आयु में ही पास कर ली थी और १६ वर्ष की आयु में काशी के क्वींस कालेज से दर्शन-शास्त्र में एम० ए० हो गये।

डा० भगवानदास का परिवार सदैव से नौकरी-विरोधी रहा है। यह परिवार सब प्रकार से समृद्ध होने पर भी अपनी अलग ही विचारधारा रखने वाला रहा है। यही कारण है कि उनके घर में समय-समय पर युग के अनुसार रहन-सहन में अन्तर होता रहा है। एक समय उनके परिवार में अंग्रेजी का इतना बोल-बाला था कि छोटी उम्र की लड़कियाँ तक अंग्रेजी में बोले बिना अपना काम नहीं चला सकती थीं। दूसरी ओर उनका परिवार पुराने वातावरण में पला होने के कारण भारतीय प्राचीन परम्परा का भी अनुरागी रहा है। यही कारण है कि तत्कालीन सरकार का कृपा-पात्र होने पर भी आपका परिवार सदैव सरकारी नौकरी करने का विरोधी रहा है। बनारस में उनका परिवार भक्ति-विचार वालों के नाम से प्रसिद्ध है। इस परिवार का एक-न-एक सदस्य अपनी जीवन-धारा पुरानी रईसी के झक्कीपन के साथ निभाता चला जा रहा है। लेकिन अपने बड़े भाई श्री गोविन्दप्रसाद की प्रेरणा पर आपने सरकारी नौकरी स्वीकार कर ली और नौकरी के क्रम से वे पहले तहसीलदार बनाये गये और बाद में डिप्टी कलक्टर आदि के महत्वपूर्ण पदों पर कार्य करते रहे। इसी बीच

थियोसाफिकल आन्दोलन चलाने के लिये स्व० ऐनीबेसेंट का सम्पर्क डा० भगवानदास के साथ हुआ। उन्होंने विचार-परामर्श द्वारा सरकारी नौकरी छोड़ कर हिन्दुओं की जागृति के लिए किसी संस्था को चलाने की प्रेरणा दी। उस प्रेरणा का फल यह निकला कि डा० भगवानदास सैन्ट्रल हिन्दू कालेज की बागडोर लेकर महामना मदनमोहन मालवीय द्वारा विश्व-विद्यालय स्थापित करने में सहायक बने। काशी विश्वविद्यालय यद्यपि महामना मालवीय जी का कीर्ति-मन्दिर है तथापि इस कीर्ति-मन्दिर की स्थापना में डा० भगवानदास तथा स्व० डा० ऐनीबेसेण्ट का भी महत्वपूर्ण हाथ है। इस दृष्टि से डा० भगवानदास एक शिक्षा प्रचारक के रूप में भी महत्वपूर्ण कार्य कर चुके हैं। १९०८ से १९१४ तक सैन्ट्रल हिन्दू कालेज का कार्य और बाद में महात्मा गाँधी के विचार पर खोली गई संस्था काशी विद्यापीठ को गौरव प्रदान कराने में आपका महत्वपूर्ण सहयोग रहा है। आपके कुलपति-काल में काशी विद्यापीठ, ऐसे नर-रत्न भारत को प्रदान कर सकी जो देश-सेवा में अग्रसर होकर राष्ट्र के गौरव बने।

काशी विश्व-विद्यालय ने आपकी विद्वत्ता के सम्मान-स्वरूप १९२९ में डाक्टर आफ लिटरेचर की डिग्री प्रदान करा के आपका सम्मान ही नहीं किया, वरन् अपना गौरव भी बढ़ाया। इसी प्रकार प्रयाग विश्वविद्यालय ने १९३७ में उन्हें डाक्टर आफ लिटरेचर की उपाधि देकर सम्मानित किया।

शिक्षा, दर्शन और राजनीति में महत्वपूर्ण कार्य करने के

कारण आपको १९१९ में राजनैतिक सम्मेलन का सभापति चुना गया और इसी प्रकार आप १९२१ में कलकत्ता में सम्पन्न हुए हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के सभापति भी बनाये गये। हमारी केन्द्रिय सरकार ने राष्ट्रपति द्वारा आपको 'भारत-रत्न' की उपाधि प्रदान की है जो भारतीय सरकार से दी जाने वाली सबसे बड़ी सम्मानित उपाधि है।

देश-सेवा में यद्यपि उनकी विचार-धारा का पूरा सहयोग सैन्ट्रल हिन्दू कालेज की स्थापना से ही आरम्भ हो गया था; लेकिन अभी तक उन्हें देश-सेवा करने का पुरस्कार नहीं मिला। सरकार ने उन्हें एक वर्ष की सजा देकर एक अवसर पर देश-सेवा का भी इनाम दे डाला।

लगभग ५० वर्ष से अधिक राष्ट्र की बहुमुखी सेवा करने के बाद उनके विचारों पर भारतीय संस्कृति की गहरी छाप है। इसके अतिरिक्त विचारों में उदारता भी है। वे भारत-विभाजन को परस्पर भेद-भाव और तामस बुद्धि का मुख्य स्वरूप मानकर इस दुर्दशा कराने के कारण वे हिन्दुओं को प्रमुख मानते हैं। वे चाहते थे कि हिन्दू जाति विभिन्न उप-जातियों में विघटित न हो। यदि इस विघटन को क्रम को रोका नहीं जा सका तो और भी अनिष्ट होने की आशंका है।

आपके विचार से मानव-संस्कृति के लिये व्यक्तित्व का प्रतिफलन विशेष महत्व रखता है। वे मानते हैं कि समाज के सुसंस्कृत होने से समाज के सभी अंगों की वृद्धि हो सकती है। देश की संस्कृति के लिए रहन-सहन और जीवन का विकास

करने वाले साधनों को भी तामस वृत्ति से परे रखना चाहते थे ।

हिन्दू संगठन के सम्बन्ध में वे परस्पर जाति-उपजाति के भेद को महत्व नहीं देते थे और वे इस जाति-भेद को हिन्दू जाति के उत्थान में बाधक मानते थे। वे १७६१ में हुई पानीपत की तीसरी लड़ाई, जिसमें मराठों और अफ़ग़ानों के बीच युद्ध हुआ था, मराठों की हार का प्रमुख कारण जाति-उपजाति का भेद ही मानते हैं। उनकी दृष्टि में समाज में चारों वर्णों का एकीकरण आवश्यक है। इसके बिना एकता टिक नहीं सकती, एक समाज तथा संस्कृति का निर्माण तभी किया जा सकता है ।

आपकी दृष्टि में विधान सभा के लिये अच्छे विद्वान् यदि चुने जायें तो देश का कल्याण हो सकता है। उन्हें इस बात पर क्षोभ है कि आजकल विधान सभा में जन-हित हीन विचार-धारा वाले आदमी चुने जाते हैं। विधान सभा में तो ऐसे ही व्यक्ति चुने जाने चाहियें जैसा कि दिल्ली लोक सभा में लिखा हुआ है कि वह सभा नहीं, जिसमें ज्ञान-विद्या सम्पन्न वृद्ध-जन नहीं ।

डाक्टर भगवानदास के सम्बंध में कहा जा सकता है कि उन्हें अपने जीवन में किसी प्रकार के अभाव की अनुभूति नहीं हुई। समृद्ध परिवार में जन्म लेने के कारण इनके जीवन में एक अभाव हो सकता था और वह यदि होता तो निश्चय ही देश के लिये दुर्भाग्य की बात होती किन्तु उन्होंने सरस्वती की आराधना करके उस अभाव की न केवल अपने जीवन में

पूर्ति की, वरन् उसका ऐसा ऐश्वर्य प्राप्त किया कि उस ऐश्वर्य में वे स्वयं तो उज्ज्वल हुए ही, अपनी लेखनी से उन्होंने अपनी आराध्यादेवी सरस्वती का भी भण्डार भरा और इसी नाते उनकी ख्याति अन्तर्राष्ट्रीय रूप धारण कर गई।

डा० भगवानदास जैसे व्यक्ति देश में कम हैं जिनका सारा जीवन देश-सेवा के विविध सराहयनीय कार्यों में लगा है। एक दृष्टि से जहाँ वे संसार के व्यवहार के अन्य विषयों में कुशल हैं वहाँ वे अपने दार्शनिक ज्ञान के कारण एक बिना शिष्य-परम्परा के दार्शनिक योगी हैं। हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेजी के सुभाषित पद उन्हें कंठस्थ हैं और आचार-विचार सम्बंधी स्मृतियों के वचन भी समय-समय पर वार्तालाप के समय उनके मुख से निकलते रहते हैं।

९० वर्ष के आस-पास पहुँचने के बाद भी डा० भगवानदास का देदीप्यमान मुख-मण्डल नवयुवकों की भाँति तथा उन से भी कहीं अधिक दीप्त रहता है। आजकल भी अनेक ग्रंथ तथा कई भाषाओं के समाचार-पत्र पढ़े बिना उनका काम नहीं चलता। वे इसे अपना आवश्यक कर्तव्य समझ मानसिक योजना का एक अंग मानते हैं।

डा० भगवानदास का स्थान देश के उन विचारकों में रहेगा जिनके कारण यहाँ की संस्कृति, यहाँ की सभ्यता और यहाँ के आचार-विचारों को गति मिली है, दिशा मिली है और जिनके कारण भारतीय संस्कृति जगत् में अग्रणी रही है।

★
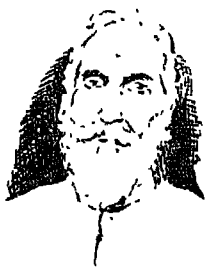
राजर्षि बाबू पुरुषोत्तमदास जी टंडन भारत के उन महापुरुषों में से हैं जिन्होंने भारत की राष्ट्रीयता, भारतीय संस्कृति, हिन्दी भाषा और मानवता के लिए अपना जीवन लगा दिया है। आपका जन्म संवत् १९४० पुरुषोत्तम मास में प्रयाग-स्थित अहिल्यापुर मुहल्ले में एक कुलीन खत्री-कुल में हुआ था। पुरुषोत्तम मास में जन्म लेने के कारण ही इनका नाम पुरुषोत्तम रखा गया। इनके पिता सदाचारी और साधु पुरुष थे। वे वहाँ के एकाउन्टेंट जनरल के दफ्तर में काम करते थे और राधा-स्वामी मत के अनुयायी थे। बाबू पुरुषोत्तमदास में भी सदाचारिता, सौम्यता का गुण विरासत के रूप में उन्हीं से आया है।

प्रारंभिक जीवन से ही टंडन जी के अपूर्व साहस, दृढ़ता और निर्भीकता का पता चलता है। अनैतिकता और अत्याचार का डटकर विरोध करना इनके जीवन का लक्ष्य रहा है। बचपन की एक घटना से इनकी निर्भीकता का पता चलता है। जब ये कालेज की क्रिकेट टीम के कप्तान थे, एक बार म्योर सेंट्रल कालेज के प्रिंसिपल खेल के अवसर पर सरकारी पुलिस की नियुक्ति कराना चाहते थे, यह बात हमारे चरित्र-

नायक बाबू पुरुषोत्तमदास जी टंडन को अच्छी न लगी। उन्होंने उसका विरोध किया और प्रिंसिपल साहब को उनकी बात माननी पड़ी। बाल्यावस्था में इनकी स्फूर्ति तथा बुद्धि की तीव्रता आदि को देखकर बड़े-बड़े हैरान हो जाते थे।

एम० ए० की डिग्री प्राप्त करने के बाद वकालत की परीक्षा पास की और इलाहाबाद में ही वकालत का व्यवसाय करने लगे। इस व्यवसाय में आपने कभी भी ऐसे मुकदमे की पैरवी नहीं कि जिसको वे निराधार समझते हों और यही कारण है कि शीघ्र ही वकालत को लात मार कर आपने त्यागमय जीवन को अपना लिया। सत्य भावना का प्रभाव इनके जीवन पर सबसे अधिक पड़ा और इन्होंने सत्य को एक आवश्यक अङ्ग मान लिया। वकालत को छोड़कर महाराजा नाभा का मंत्रित्व स्वीकार कर लिया और दो वर्ष के कार्य-काल में नाभा में रहकर अपनी योग्यता का परिचय दिया। स्वर्गीय महाराजा नाभा इनके गुणों पर मुग्ध थे और उनकी आकांक्षा थी कि वे उनके मंत्रित्व का भार सँभाले रहें, किन्तु एक स्वतन्त्र और उदार मनुष्य के लिए किसी बंधन में रहना कठिन हो जाता है। यही बात बाबू पुरुषोत्तमदास जी टंडन के जीवन में भी हुई। ये वहाँ से हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के प्रयाग अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए गए और फिर वापस नहीं गए। इलाहाबाद में रहकर उन्होंने सार्वजनिक और राजनीतिक जीवन में प्रवेश किया और देश की सेवा में अपने जीवन को लगाया। हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के एक प्रकार से जन्मदाता और प्राण-पोषक बाबू पुरुषोत्तमदास जी

टंडन ही हैं। जब से आपने सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया है, तब से लेकर आप आज तक हिन्दी की सेवा करते आ रहे हैं और हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर बिठाने का समस्त श्रेय इन्हीं को है। जब सम्मेलन की नींव डाली गई थी तब सम्मेलन के लिए अपने छोटे-से मकान के कमरे में स्थान देकर उसका पालन-पोषण किया। आज भी यद्यपि सम्मेलन का अपना कार्यालय भव्य भवन में है, फिर भी वह कमरा सम्मेलन का कमरा ही कहलाता है।

बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन ने सिद्धान्तों की रक्षा के लिए बड़े-से-बड़े मनुष्यों का विरोध सहन करने में भी तनिक संकोच नहीं किया। राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रश्न को लेकर जब गांधी जी से आपका मतभेद हुआ तो आपने तनिक भी परवाह न की और जब गांधी जी ने हिन्दुस्तानी का पक्ष लेकर हिन्दी साहित्य-सम्मेलन से त्यागपत्र दे दिया तो उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया। गांधी जी के त्यागपत्र से बड़ी हलचल मच गई थी और ऐसा लगता था कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन दो गुटों में बँट जायगा। ऐसे संकटकाल में भी बाबू पुरुषोत्तमदास जी टंडन घबराये नहीं और उन्होंने त्याग-पत्र स्वीकार करते हुए कहा कि बापू हमारे देश के सबसे बड़े नेता हैं, परन्तु हमारी हिन्दी भाषा बापू से भी बड़ी है और हम हिन्दी के लिए बापू को भी छोड़ सकते हैं। मतभेद होने पर भी टण्डन जी गांधी जी के विश्वासपात्रों में से थे और मृत्यु से पूर्व गांधी जी ने आपको प्रयाग से बुलाकर कई एक बातों के सम्बन्ध में परामर्श किया था।

बाबू पुरुषोत्तमदास जी टंडन ने गांधी जी के नेतृत्व में देश की लड़ाई लड़ी। उत्तर प्रदेश कांग्रेस के ये कई बार प्रधान रहे और इसी प्रसंग में इन्होंने जेल का भी कष्ट उठाया। जहाँ वह राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरित होकर कांग्रेस का कार्य करते आए हैं, वहाँ हिन्दी-साहित्य के कट्टर पक्षपाती और भारतीय संस्कृति के दृढ़ अनुगामी भी रहे हैं। आप कई वर्षों तक उत्तर प्रदेश की धारा सभा के अध्यक्ष भी रहे।

श्री टंडन जी कई वर्ष से साधुओं के समान जीवन व्यतीत कर रहे हैं। नमक, दूध, घी और अन्य वस्तुओं का उन्होंने परित्याग कर दिया है। मानव का आज जो पतन हो रहा है उस से आप दुःखी हो उठते हैं। आपने अपने भाषण में ऐसा कई बार उल्लेख किया है कि देश की उन्नति भवनों से नहीं, भावनाओं से होगी। यदि देश का चरित्र न रहा तो देश पतन की ओर जायगा।

बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन की सादगी तथा निःस्वार्थ भावना के कारण ही राष्ट्र ने उन्हें 'राजर्षि' की उपाधि प्रदान की है। आज भी आप देश की सेवा कर रहे हैं। कांग्रेस के अध्यक्षीय पद पर आसीन होकर आपने जो भाषण दिया था वह सर्वथा निर्भीक, निडर और राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत था। उनके ये शब्द कितने मर्मपूर्ण हैं, कि "आज हमें सबसे अधिक आवश्यकता आदर्श की ओर चलने की प्रेरणा और उस प्रेरणा को मूर्तिमान करने की तपस्या की है।"

बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन का जीवन देश की सेवा के लिए लगा। उन्होंने हिन्दी की महान् सेवा की और हिन्दी को राष्ट्र-

भाषा के रूप में लाने का श्रेय आपको ही है। हिन्दी से आप को कितना स्नेह है यह इस उदाहरण से जाना जा सकता है। एक बार आपकी कार का चालान हो गया। चालान होने का कारण मोटर पर हिन्दी में लगा नम्बर था। इस पर आपने कहा कि मैं हिन्दी के लिए जेल जा सकता हूँ, पर जुर्माना नहीं दे सकता और न ही अंग्रेजी अक्षरों में नम्बर का ही प्रयोग करूँगा। वृद्ध हो जाने पर भी आप देश-कार्य और राष्ट्रभाषा हिन्दी के कार्य में जुटे हुए हैं। आपका विचार है कि देश तभी उन्नति कर सकता है जब लोग राष्ट्रभाषा का प्रयोग करें और पूर्ण रूप से राष्ट्रवादी बनकर शुद्ध आचरण से देश को ऊँचा उठाएँ। कथनी और करनी में अन्तर नहीं होना चाहिये।

आचार्य विनोबा भावे का भूदान-आन्दोलन देश ही में नहीं वरन् विदेशों तक में बहुत दिनों से चर्चा का विषय बना हुआ है। सारा संसार इस बात का आश्चर्य करता है कि एक दुर्बल शरीर के व्यक्ति ने सारे देश को पैदल घूमकर कैसे बाँध रखा है। विनोबा जी के भूदान-आन्दोलन के सम्बन्ध में एक व्यक्ति ने कहा था कि "विनोबा के भूदान-आन्दोलन में कोई जीवन-दर्शन नहीं है।" उसके उत्तर में श्री विनोबा जी ने (सर्वोदय) पत्र में उत्तर दिया कि यदि भूदान-आन्दोलन के पीछे कोई तत्व-ज्ञान न होता तो मेरे पाँव कभी के ढीले पड़ गये होते।

आचार्य विनोबा भावे से उनके दिल्ली-प्रवास में मुझे बापू की समाधि के निकट कई बार मिलने का अवसर मिला। मेरे हृदय में भूदान-आन्दोलन के प्रति जो सन्देह-पूर्ण भावनाएँ थीं, वह मैंने विनोबा जी पर स्पष्ट कीं। उन्हें सुन कर विनोबा जी ने बुरा नहीं माना और जहाँ तक बन सका, मेरे प्रश्नों का समाधान किया।

आचार्य विनोबा भावे सबसे पहले देश के सामने महात्मा गांधी के वैयक्तिक सत्याग्रह के सत्याग्रही के रूप में सन् १९४१ में

आये। यद्यपि विनोबा जी का नाम इससे पहले भी गांधीवादी विचार-धारा के विचारकों में सुना जाता था और जब गांधी जी ने अपने उस आन्दोलन का सबसे पहला डिक्टेटर इन्हें चुना तब देश ने इनकी शक्ति भी विशेष रूप से पहचानी। गांधी के बाद वे न तो किसी राजनैतिक नेता के उत्तराधिकारी हैं और न वह इस बात में विश्वास करते हैं कि उन्हें किसी का उत्तराधिकार प्राप्त किये बिना जीवन-क्षेत्र में कोई काम करने का अधिकार नहीं है। विनोबा जी ने देश की एक कमी को पहचाना और उसके लिए वे गाँव-गाँव पैदल घूम कर प्रचार करने लगे। यही उनका सबसे बड़ा काम है और उनका कहना है कि "जमीन किसी एक की नहीं इसका सुख किसी दूसरे को भी मिलना चाहिए जिस दृष्टि से उनका कहना है कि जमीन बँट कर रहेगी।"

आचार्य विनोबा भावे का जन्म ११ सितम्बर १८९५ में एक महाराष्ट्र के धर्मनिष्ठ परिवार में हुआ। विनोबा जी की माता रखुमाई बड़े धार्मिक आचार-विचार की महिला थीं। उनका हृदय साधु-सन्तों की सेवा करके सुख पाता था। आप पर सन्त विचार-धारा का जो प्रभाव दिखाई देता है वह उनकी माता की देन है। विनोबा जी के दादा शम्भूराव भावे बड़े ही विरक्त स्वभाव के व्यक्ति थे और उनका भी अधिकाँश समय भगवत्-भजन में बीतता था। इस कारण विनोबा जी पर जीवन-भक्ति के प्रति और भारतीय संस्कृति के प्रति विशेष अनुराग बाल्य-काल में ही उत्पन्न हो गया था। बचपन में विनोबा जी ने महापुरुषों की कहानियाँ सुनी थीं उन्होंने सुना था कि

देश के जागरण में समर्थ गुरु रामदास और सन्त एकनाथ, स्वामी शंकराचार्य और छत्रपति शिवाजी ने क्या-क्या किया। यह सुन कर उनका हृदय इनकी भक्ति से ओत-प्रोत हो गया। बाल्यकाल में विनोबा जी विद्यार्थी अवस्था में अपनी श्रेणी में अच्छे विद्यार्थियों में गिने जाते और संस्कृत में वे विशेष स्थान रखते थे। एक बार आपने अपने विद्यार्थी-जीवन में जंगल में अपने साथियों के साथ शिवाजी-जयन्ती मनाई और जयन्ती मनाने के कारण आपको तथा आपके साथियों को दण्ड भी चुकाना पड़ा। विनोबा जी ने अपने बाल्यकाल में बहुत-से ग्रन्थ पढ़ डाले थे। जिन दिनों वे हाई-स्कूल की परीक्षा पास कर चुके थे और कालेज के क्षेत्रों के रूप में जीवन व्यतीत कर रहे थे उन दिनों आपको महात्मा गांधी का भाषण सुनने का अवसर मिला और गांधी जी के विचारों से प्रभावित होकर उन्हें पत्र लिखा और आज्ञा चाही कि आपके आश्रम में मुझे भी रहने का अवसर दिया जाये। गांधी जी ने स्वीकृति दे दी और विनोबा जी गांधी जी के आश्रम में आ गये।

विनोबाजी अपने बाल्यकाल ही से एक साधनापूर्ण जीवन बिताने के पक्षपाती रहे और बाल्यावस्था में इन्होंने पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया। ब्रह्मचर्य व्रतपालन करने में उनका विश्वास है कि उनकी माता की शक्ति ने बहुत सहायता प्रदान की। विनोबा जी कुछ दिनों तक अध्यापक भी रहे, किन्तु उससे उनकी प्यास नहीं बुझी। यद्यपि राजनीतिक में भाग लेने का कभी विनोबा जी ने इरादा नहीं किया, किन्तु समय ने उन्हें

राजनीति से अलग नहीं रखा। जिन दिनों नागपुर में झण्डा-सत्याग्रह चला रहा था तब विनोबा जी उसके संचालन में लगे और बन्दी बनाये गये। इसके बाद महात्मा गांधी के व्यक्तिगत सत्याग्रह में सबसे पहले सत्याग्रही आप बने।

इसके अलावा अनेक आन्दोलनों में आप गाँधी जी के सहयोगी रहे। अपने जेल के जीवन में भी आपका ध्यान रचनात्मक कार्यों की ओर विशेष रूप से रहा।

विनोबा जी का विश्वास है कि दरिद्रनारायण की सेवा के लिए यह आवश्यक है कि जनता का हृदय-परिवर्तन करके ऊँच-नीच का भेद-भाव दूर किया जाय। कई वर्ष पूर्व आपने इसी भावना से प्रेरित होकर तैलंगाना से अपनी पद-यात्रा यात्रा शुरू की और अब तक कई प्रान्तों में घूम कर भूमि-हीन व्यक्तियों का आश्रय जुटाने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं।

घुटनों तक धोती, पैर में चप्पल, शरीर पर खद्दर की चादर और आँखों में चश्मा लगाये सादगी और सरलता के अवतार श्री विनोबा भावे प्राचीन सन्तों की परम्परा में आते हैं। आपके प्रवचन हृदयग्राही होते हैं। एक बार भी आपके सम्पर्क में आने वाला व्यक्ति आपका भक्त बन जाता है। आज समस्त देश में विनोबा की वाणी गूँजती दिखाई देती है। अपका कहना है कि दुनिया में चन्द रोज़ दुःख और चन्द रोज़ सुख आते रहते हैं। ये दो भाई-भाई हैं। एक गया तो दूसरा आता है। घर में किसी की मृत्यु हुई तो हम रोते हैं और जन्म हुआ तो खुशी मानते हैं। इस तरह सुख-दुःख जन्म-मृत्यु दुनिया में चलते ही रहते हैं। इसलिए सुख-दुःख दूर

करना मुख्य कार्य नहीं हैं। मुख्य कार्य है द्वेष के विरुद्ध लड़ना। हमें यही विचार दृढ़ करना चाहिए सबसे पहले हम मानव हैं और बाद में कुछ और हैं।"

विनोबा जी साहित्य-प्रेमी भी हैं। उन्होंने पिछले वर्ष केरल में साहित्यकारों से अनुरोध किया था कि वे सरस्वती की उपासना के साथ-साथ राष्ट्रमाता भूमि की उपासना भी करें और कम-से-कम दो एकड़ जमीन लेकर खेती करें। विनोबा जी साहित्य की शक्ति को परमेश्वर की शक्ति से बड़ा मानते हैं। उनका कहना है कि साहित्यकार ने ब्रह्माण्ड में जो वस्तु नहीं है, उसका भी दर्शन किया है। जैसे—आकाश में गंगा नहीं है, किन्तु साहित्यिक दृष्टि में गंगा है। इसलिए साहित्यकार यदि तत्परता से काम करें तो वह राष्ट्र में एक नवचेतना ही प्रदान कर सकते हैं।

बिनोवा जी की दृष्टि में भूदान आन्दोलन ग्रामोद्योग-प्रधान और अहिंसक क्रांति का मार्ग है। इस आन्दोलन द्वारा शोषण-विहीन समाज की सही अर्थों में स्थापना की जा सकती है। विनोबा जी चाहते हैं कि उनके जीवन में वह समय आये जिस दिन भारत का एक भी व्यक्ति भूमिहीन न रह जाये। विनोबा जी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह जिस वर्ग में जो कमी अनुभव करते हैं उसे आँख मूँद कर वे सहन नहीं करते किन्तु अपनी वाणी और लेखनी से उसका जोरदार विरोध करते हैं। यही कारण है कि महात्मा गांधी के बाद जनता पर विनोबा जी की वाणी का बहुत प्रभाव पड़ता है।

★

महान् वैज्ञानिक

★ महान् वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र वसु

★ सर चन्द्रशेखर वेंकट रमन

★ डा० शान्ति स्वरूप भटनागर

स्व० श्री जगदीशचन्द्र वसु, भारत-माता के उन सपूतों में से हैं जिन्होंने अपनी प्रतिभा से भारत का मस्तक संसार में उन्नत किया। उन्होंने अपनी खोज द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि *वनस्पति और वृक्षों में भी अन्य प्राणियों के सदृश जीव* है। वे भी हम लोगों की तरह हैं और चोट पहुँचने पर हमारी ही तरह उन्हें भी वेदना होती है। उनको विष देने से हमारी ही तरह उन पर भी प्रभाव पड़ता है। सुख-दुःख की अनुभूति भी उन्हें बिलकुल हमारी ही तरह होती है। वे रात को हमारी ही तरह सोते और प्रातःकाल जागते हैं। इन बातों को श्री वसु ने केवल कल्पना तक ही सीमित नहीं रखा, अपितु यंत्रों से उन क्रियाओं का प्रत्यक्ष दर्शन करके अपने सिद्धांत की सत्यता प्रकट की। इस अनुसंधान द्वारा श्री वसु ने भारत का मस्तक उन्नत किया और विदेशी वैज्ञानिकों पर भारतीय प्रतिभा की धाक जमाई।

श्री जगदीश चन्द्र वसु बंगाल के ढाका जिले के विक्रमपुर नामक गाँव में पैदा हुए थे। इनके पिता बाबू भगवानचंद्र वसु एक उच्च सरकारी अफसर थे। बाल्यकाल से ही जगदीशचंद्र

प्रतिभाशाली थे। अपनी प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करके कलकत्ते के सेंट जेवियर कॉलिजिएट स्कूल में भर्ती हुए और मैट्रिक की परीक्षा पास करके बी० ए० की उपाधि प्राप्त की। श्री वसु के परिवार वालों की इच्छा थी कि वे किसी सरकारी पद पर लगें और इसके लिये उन्हें आई० सी० एस० की परीक्षा पास करने के लिये विलायत भेजने का विचार भी उनके परि-वार वालों ने किया किन्तु उनके भाग्य में वैज्ञानिक बन कर ख्याति प्राप्त करना ही लिखा था। अपने पिता की इच्छानुसार वे विलायत गये और वहाँ विज्ञान की उच्च शिक्षा प्राप्त की। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करते हुए उन्हें प्रसिद्ध वैज्ञानिकों के सम्पर्क में आने और प्रयोगशाला में उनके साथ काम करने का अवसर मिला।

विज्ञान की उच्च शिक्षा प्राप्त करके श्री वसु भारत आये और कलकत्ता के प्रेसिडेंसी कालेज में भौतिक-विज्ञान के प्रोफेसर बने। उस समय भारत पराधीन था और पराधीनता के कारण विदेशी विद्वानों की तरह भारतीय विद्वानों को सम्मान नहीं मिलता था; श्री वसु के साथ भी यही हुआ। उन्हें जो वेतन मिलना चाहिए था वह भारतीय होने के कारण नहीं मिला। आचार्य वसु ने इस अन्याय का विरोध करने के लिये तीन वर्ष तक वेतन के रुपये नहीं लिये और आर्थिक कष्ट उठाकर भी अध्यापन का कार्य करते रहे। अन्त में शिक्षा-विभाग को झुकना पड़ा और उन्हें पूरा वेतन दिया गया।

आचार्य वसु इस बात को जानते थे कि भारत के वैज्ञा-निक जब तक खोज में विश्व के वैज्ञानिकों के समान कार्य

नहीं करेंगे तब तक भारत का नाम ऊँचा नहीं हो सकता। उस समय कालेज में कोई भी अच्छी प्रयोगशाला नहीं थी। इस कमी को श्री वसु ने पूरा किया और अधिक परिश्रम करने के बाद बचे हुए समय में वैज्ञानिक प्रयोग करना प्रारम्भ किया। उन्होंने कई महत्वपूर्ण खोज कीं और उन पर अनुसंधानात्मक निबंध लिखे; जिनका विदेशों के वैज्ञानिकों ने बड़ा आदर किया। उन खोजों के कारण ही लंदन-विश्वविद्यालय ने श्री वसु को 'डाक्टर आफ साइंस' की उपाधि से सम्मानित किया। बिजली की तरंगों के बारे में भी आचार्य वसु ने जो खोज कीं, वे महत्वपूर्ण हैं। जिन दिनों विश्व के वैज्ञानिक बेतार के तार के बारे में खोज कर रहे थे इन्हीं दिनों आचार्य वसु ने १८९५ ई० में बंगाल के गवर्नर के समक्ष बिजली की तरंग उत्पन्न करके महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की किन्तु आचार्य वसु का नाम वनस्पतियों के सम्बंध में खोज करने से ही हुआ। अपनी खोजों को सिद्ध करने के लिये श्री वसु विलायत भी गये और वहाँ वैज्ञानिकों के समक्ष अपनी खोज को सिद्ध करके दिखाया। जब श्री वसु ने कहा कि पेड़-पौधे भी हमारी तरह जीवित प्राणी हैं तो लोग हँसने लगे और परस्पर बातचीत करने लगे कि इस व्यक्ति का मस्तिष्क विकृत हो गया है, किन्तु श्री वसु ने उस उपहास की तनिक भी परवाह न करके अपने सिद्धांतों को सिद्ध करके दिखाया और अपने देशी कारीगरों द्वारा बनाये गये सूक्ष्म यंत्रों से वनस्पतियों की संवेदनशीलता लोगों को प्रत्यक्ष दिखलाई। इन यंत्रों की बारीकी देखकर विदेशी वैज्ञानिकों ने उनकी मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की।

आचार्य वसु जीवन-भर अपने प्रयत्नों द्वारा विज्ञान की उन्नति करते रहे। उन्होंने अपनी आय का अधिकांश भाग विज्ञान की उन्नति में लगाया। मृत्यु के समय तक वह खोज का कार्य करते रहे और अपनी इस खोज के कारण वे अपने परिवार के लिये अधिक धन एकत्र न कर सके। इसके साथ ही उन्होंने अपनी पूँजी को विज्ञान की उन्नति के लिए अर्पित कर दिया।

आज आचार्य वसु इस संसार में नहीं हैं। वे नवम्बर १९३७ में ही इस संसार को छोड़कर स्वर्ग सिधार गये थे। अपने कार्यों द्वारा भारतीय वैज्ञानिकों के लिये मार्ग प्रशस्त करने के साथ-साथ उन्होंने विज्ञान की उन्नति के लिये विज्ञान-मंदिर की स्थापना की, और एक वृहद् प्रयोगशाला का निर्माण किया।

★

पराधीन भारत में अपनी प्रतिभा द्वारा नोबल पुरस्कार विजेता श्री चंद्रशेखर वेंकट रमन का नाम भारतीय इतिहास में सदा अमर रहेगा। श्री वेंकट रमन ने विज्ञान-जगत् में गौरव प्राप्त करके भारत का मस्तक उन्नत किया और संसार के सामने भारतीय प्रतिभा का उदाहरण प्रस्तुत किया।

श्री चंद्रशेखर वेंकट रमन का जन्म दक्षिण भारत के प्रसिद्ध नगर तिरुचिरापल्ली में नवम्बर सन् १८८२ में हुआ था। आपके पिता श्री चंद्रशेखर अय्यर साधारण परिवार से सम्बन्ध रखते थे और वे तिरुचिरापल्ली में एक स्कूल के अध्यापक थे। श्री रमन बाल्यावस्था में ही प्रतिभाशाली जान पड़ते थे। छोटी आयु होते हुए भी इनकी प्रतिभा को देखकर इनके अध्यापकवर्ग कहा करते थे कि यह किसी-न-किसी दिन भारत का मस्तक ऊँचा करेगा। श्री रमन को बचपन से ही विज्ञान के प्रति आकर्षण था और घर वालों तथा साथियों के द्वारा विरोध करने पर भी इन्होंने विज्ञान का विषय लिया। श्री रमन ने बी० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की और भौतिक विज्ञान में विशेष योग्यता प्राप्त

की। इसके अनन्तर इन्होंने भौतिक विज्ञान लेकर एम० ए० पास किया। यद्यपि प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने और विशेष प्रतिभा के कारण मद्रास विश्वविद्यालय ने सरकारी छात्रवृत्ति देकर उच्च शिक्षा के लिये इन्हें विलायत भेजने की व्यवस्था की किन्तु स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण विलायत न जा सके।

कालेज की शिक्षा समाप्त करके श्री रमन आय-व्यय विभाग में अधिकारी होने के लिए संयोजित प्रतियोगिता में बैठे और सर्व-प्रथम आकर डिप्टी एकाउण्टेंट जनरल नियुक्त हुए। आय-व्यय-विभाग में उच्च स्थान पाने के पश्चात् भी श्री रमन को शांति नहीं मिली। विधाता ने उन्हें किसी अन्य कार्य के लिए ही बनाया था। अपनी आत्मिक शांति के लिए श्री रमन कलकत्ता-स्थित विज्ञान के सम्वर्धन के लिये स्थापित संस्था के सदस्य बने और अवकाश के क्षणों में वैज्ञानिक प्रयोग करने लगे। इसी बीच कलकत्ता-विश्वविद्यालय में भौतिक विज्ञान के एक प्रोफेसर का स्थान रिक्त हुआ। उन दिनों कलकत्ता-विश्वविद्यालय के उप-कुलपति स्वर्गीय श्री आशुतोष मुकर्जी थे। उनकी दृष्टि श्री रमन की ओर गई और उन्होंने उनसे प्रोफेसर बनने के लिए आग्रह किया। श्री मुकर्जी की प्रेरणा पाकर श्री रमन भौतिक विज्ञान के प्रोफेसर बन गये।

श्री रमन जब कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रोफेसर बने तो उन्होंने अपनी अद्भुत योग्यता का परिचय कुछ समय बाद ही देना प्रारम्भ कर दिया। उन्हीं के कारण कलकत्ता विश्व-विद्यालय की ख्याति बढ़ गई और दूर-दूर से विद्यार्थी भौतिक विज्ञान की शिक्षा लेने के लिये कलकत्ता आने लगे। धीरे-

धीरे श्री रमन की ख्याति विश्व में फैल गई। कलकत्ता विश्व-विद्यालय ने उन्हें 'डाक्टर आफ साइंस' की उपाधि दी।

श्री रमन ने ध्वनियों के सम्बंध में महत्वपूर्ण खोज की और वीणा, मृदंग तथा तबला आदि की ध्वनियों का विस्तृत अनुशीलन करके विदेशी वैज्ञानिकों के समक्ष वास्तविक तथ्य रखा और यह सिद्ध किया कि वे ध्वनियाँ भी विज्ञान की दृष्टि से सुसंगत और रागात्मक हैं। विदेश के वैज्ञानिकों ने भी श्री रमन को अपने अनुसंधानों के सम्बन्ध में जानकारी देने के लिये अपने देश में बुलाया। इस सम्बन्ध में श्री रमन इंगलैंड तथा अमेरिका भी गये। विदेश में जाकर श्री रमन ने उत्कृष्ट श्रेणी की प्रयोगशालाओं और नवीन वैज्ञानिक यंत्रों को देखा और भारत आकर वे अपने अनुसंधान-कार्य में जुट गये। सन् १६२८ में उन्होंने प्रकाश निरखने के सम्बंध में खोज की, जो उनका सबसे महत्वपूर्ण अनुसंधान माना जाता है और जिसे 'रमन प्रभाव' की संज्ञा प्राप्त है। श्री रमन ने अपने प्रयोग के सम्बंध में एक रंग की किरण का प्रयोग करने के लिये पारे की भाप से उत्पन्न प्रकाश लिया और उसकी किरण को एक शीशे के गोले में पहुँचाया। उस गोले में कोई द्रव या वायव्य पदार्थ रखा। उस गोले में पहुँचती हुई किरण से सम-कोण बनाते हुए एक किरण चित्रदर्शक यन्त्र रखा, जिससे उस गोले से निकलते हुए प्रकाश का किरण-चित्र बगल की दिशा से लिया जा सके। पारे की भाप का प्रकाश गोले में पहुँच कर जब बिखरता तो उसकी शक्ति कुछ कम हो जाती; किन्तु उससे उस गोले में रखे पदार्थ के अणु उत्तेजित होकर अपना भी कुछ प्रकाश

उत्पन्न करके बिखरी हुई रोशनी में सम्मिलित कर देते, इस कारण पारे वाली रेखा तो उत्पन्न ही होती साथ में दूसरी कई रेखायें भी उत्पन्न हो जातीं; जिसका कारण गोले का पदार्थ था। यही रेखायें 'रमन रेखायें' कहलाती हैं और चित्र पट 'रमन चित्रपट' नाम से प्रसिद्ध है। रमन रेखाओं के सम्बंध में संसार के वैज्ञानिक अनुसंधान करने में संलग्न हैं। श्री रमन ने अपना पहला प्रयोग जिस यंत्र से किया था उसमें तीन हजार बत्ती की शक्ति का प्रयोग प्रदान किया गया था। जब श्री रमन ने इस अपूर्व शक्ति का अनुसंधान किया तो संसार के वैज्ञानिकों ने उनकी महत्ता स्वीकार की और वे पाश्चात्य वैज्ञानिकों द्वारा इस गवेषणा पर व्याख्यान देने के लिये निमंत्रित किये गए। तत्कालीन सरकार द्वारा इन्हें 'सर' की उपाधि प्रदान की गई और बाद में रायल सोसायटी ने पदक प्रदान किया। अनेक विश्वविद्यालयों ने श्री रमन का सम्मान किया।

जब संसार प्रसिद्ध नोबल पुरस्कार श्री चंद्रशेखर वेंकट रमन को प्रदान करने की घोषणा पत्रों में प्रकाशित हुई तो इस समाचार से सारे संसार में भारत का मस्तक उन्नत हो गया। श्री रमन ने नार्वे जाकर वहाँ के सम्राट के हाथ से एक लाख तीस हजार रुपये का भौतिक विज्ञान का यह पुरस्कार प्राप्त किया। इसके बाद श्री रमन बंगलौर के 'इंडियन इंस्टिट्यूट आफ साइंस' में डायरेक्टर बनाये गये। श्री रमन से पहले इसके डायरेक्टर विदेशी हुआ करते थे।

श्री रमन भारतीय विज्ञान परिषद् के अध्यक्ष पद पर भी रहे और अपने अध्यक्ष-काल में उन्होंने भारत में वैज्ञानिक उन्नति के लिये अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये।

भारतीय वैज्ञानकों की परम्परा में स्वर्गीय डा० शान्ति-स्वरूप भटनागर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। स्वर्गीय भटनागर अकेले वैज्ञानिक ही नहीं अपितु वे पूर्ण रूप से मानव-हृदय के पात्र भी थे। श्री भटनागर ने अपने जीवन में काव्य-रचना भी की थी और उनकी रचनाओं का एक संग्रह 'लाजवन्ती' नाम से प्रकाशित भी हुआ था। पुस्तक का नाम इन्होंने अपनी पत्नी के नाम से रखा, जिसका प्रमुख कारण यह था कि स्व० भटनागर जो कुछ भी लिखते थे उसे वे कभी सँभाल कर नहीं रख पाते थे और जहाँ मन चाहता वहाँ फेंक देते थे। उनकी पत्नी से इनकी यह लापरवाही छिपी न रह सकी और उन्होंने जहाँ-तहाँ नष्ट हो रही उन सारी कविताओं को सँजो कर एक जगह एकत्रित कर दिया और समय पाकर मुक्त रूप से लिखी गई ये कविताएँ 'लाजवन्ती' नाम से एक संग्रह के रूप में प्रकाशित हुईं।

डा० भटनागर का व्यक्तित्व अद्भुत था और वे जितने बड़े बने, अपनी प्रतिभा के बल पर ही आगे बढ़ सके। उनके जीवन में अनेक संघर्ष आये, पर उन्होंने उनकी चिन्ता न कर के निरन्तर अध्यवसाय से अपनी शक्ति का उपयोग किया और यह दिखा दिया कि जो काम बड़े-बड़े साधनों से पूरे नहीं हो पाते वह निरन्तर कोशिश करने से सफल हो जाते हैं।

डा० भटनागर के जीवन में सबसे बड़ी एक विशेषता यह थी कि उन्होंने किसी दूसरे के वैर-विरोध की परवाह न करके अपनी जीवन-दिशा को आगे बढ़ाने के लिए प्रयत्न किया और उन्हें आशा से अधिक सफलता मिली।

डा० भटनागर पंजाब के जिला शाहपुर के अन्तर्गत हीरा नामक ग्राम में २१ फरवरी १८६४ में पैदा हुए। इनके पिता एक हाईस्कूल में मुख्याध्यापक थे और उनका अधिकांश समय स्कूल की शिक्षा-व्यवस्था में ही व्यतीत होता था। जब यह आठ मास के अबोध बालक ही थे तब इनके जीवन में सबसे बड़ा संकट उत्पन्न हुआ और इनके पिता का देहान्त होने के कारण एक तरह से निराश्रित हो गये। इन्हें अपने नाना के घर जाकर शिक्षा की सुविधाएं प्राप्त करने के लिए यत्न करना पड़ा।

स्व० भटनागर के नाना रेलवे विभाग में एक अच्छे पद पर थे और उनका सम्बन्ध इंजीनियरिंग विभाग से था। अपने नाना के इंजीनियरिंग विभाग का प्रभाव डा० भटनागर के कोमल हृदय पर पड़ा और उन्होंने वैज्ञानिक बनने का निश्चय किया। अपने नाना के यहाँ उन्हें उर्दू साहित्य से भी

लगाव हुआ। इसका कारण यह था कि इनके नाना के गाँव में उर्दू के प्रतिष्ठित कवि मौजूद थे जिनके साथ रहने का डा० साहब को भी सौभाग्य मिला और वैज्ञानिक हृदय में कविता के अंकुर भी फूट पड़े। यद्यपि वैज्ञानिक शोध के कामों में लगे रहने के कारण आपको बहुत कम समय मिल पाता था, किन्तु जब भी अवसर मिला, तब-तब ही उन्होंने अपने उन मूल्यवान क्षणों का उपयोग काव्य-रचना के निमित्त किया। काव्य-रचना के अतिरिक्त वह यदा-कदा मुशायरों में भी भाग लेने जाया करते थे।

डा० भटनागर के वैज्ञानिक हृदय का बाल्यकाल ही में एक चमत्कार इनके निकटवर्ती लोगों को देखने को मिला। इन्होंने अपनी आठ वर्ष की आयु में अपनी सूझ से भाप का एक इंजन तैयार किया और जब वह भाप के दबाव पड़ने से फट कर चलने लगा तो इन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। अपनी शिक्षा के लिए डा० भटनागर को पहले छात्रवृत्ति का आश्रय लेना पड़ा और बाद में अपनी योग्यता से एक रायसाहब को मुग्ध किया, जो इनकी शिक्षा के साधन जुटाने में सक्रिय रहे। बाद में यही रायसाहब इनके ससुर भी बने। अपने विद्यार्थी-जीवन में डा० भटनागर ने अपने पैरों पर खड़ा होकर शिक्षा अर्जित की। ट्यूशन पढ़ा कर तथा छात्रवृत्ति लेकर इन्होंने अपना खर्चा चलाया। अपने विद्यार्थी-काल में यह कुशाग्र-बुद्धि छात्रों में माने जाते थे और विनोदी स्वभाव होने के कारण यह अपने शिक्षा-काल में अध्यापकों तक को परेशान करने से बाज नहीं आते थे। अपने विद्यार्थी जीवन में इन्होंने विज्ञान-सम्बंधी

विषयों पर समाचार-पत्रों में कई महत्वपूर्ण लेख लिखे थे जिनसे इनको काफी प्रसिद्धि हुई। दसवीं परीक्षा में प्रथम श्रेणी में आने के कारण इन्हें सरकारी छात्रवृत्ति मिली और इसी तरह संस्कृत में प्रथम आने के कारण इन्हें एक विशेष पुरस्कार भी मिला।

विश्वविद्यालय में शिक्षा पाते हुए इन्होंने रंगमंच की ओर भी ध्यान दिया और विश्वविद्यालय में खेले गये कई अंग्रेजी नाटकों में आपने अभिनय भी किया था। स्वयं भी भटनागर जी ने 'करामती' नाम का एक उर्दू में नाटक लिखा, जिसका कुछ वक्त बाद अंग्रेजी में भी रूपान्तर हुआ।

स्व० भटनागर बी० ए० पास करने के बाद शोध-कार्य की ओर प्रवृत्त हुए और एम० ए०, एम० एस-सी० की उपाधि पंजाब विद्यालय से प्राप्त की। उसके बाद दिल्ली, पटना, प्रयाग, लखनऊ आदि विश्वविद्यालयों ने डा० भटनागर का सम्मान करते हुए उन्हें डाक्टरेट की उपाधि प्रदान की। लगभग १९१९ में आप शोध-कार्यों के लिए अमेरिका जाना चाहते थे किन्तु कुछ कठिनाई उपस्थित होने के कारण अमेरिका न जाकर लन्दन में ही रहकर शोध-कार्य किया। डा० भटनागर ने बहुत से देशों का भ्रमण भी किया था। डा० भटनागर के पास वैज्ञानिक शोध-कार्यों में सहायता लेने के लिये समय-समय पर बहुत से वैज्ञानिक उनके पास आया करते थे और वे उनका उचित मार्ग-दर्शन किया करते थे।

डा० भटनागर बहुत दिनों तक दिल्ली में रहे और दिल्ली के प्रति उनका बहुत बड़ा अनुराग रहा। दिल्ली में वैज्ञानिकता

जिस गति से आगे बढ़ सकी उसमें डा० साहब का पूरा हाथ रहा। खेद है कि ऐसे प्रतिभाशाली वैज्ञानिक विद्वान् को भी परमात्मा ने हमारे बीच से शीघ्र ही उठा लिया। स्वतन्त्र भारत में जो वैज्ञानिक खोजें हुई हैं उनमें से बहुत-सी खोजें डा० भटनागर के संरक्षण में हुई हैं। यदि वह और कुछ वर्ष जीवित रहते तो कम-से-कम उत्तर भारत उनकी सेवाओं से वंचित न रह पाता।

डा० भटनागर बड़े विनोदी स्वभाव के थे। वह जिस स्थान पर बैठ जाते वहाँ सरसता स्वयं ही उत्पन्न हो जाती। अपने जीवन-काल में वह बहुत से असमर्थ छात्रों को शिक्षा के साधन जुटाने में प्रयत्नशील रहे।

दार्शनिक एवं शिक्षा-शास्त्री

★ हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द

★ महर्षि कर्वे

★ विश्वकवि रविन्द्रनाथ ठाकुर

★ महामना मदनमोहन मालवीय

★ सर्व पल्ली डा० राधाकृष्णन्

★ आचार्य नरेन्द्र देव

स्वामी दयानन्द के राष्ट्र-निर्माण के स्वप्न को पूरा करने वालों में उनके प्रमुख अनुयायी स्वामी श्रद्धानन्द थे। स्वामी श्रद्धानन्द ने स्वामी दयानन्द के शेष कार्यों को पूरा करने के लिए अपने प्राणों का भी मोह नहीं किया। इस मार्ग में सेवा करते-करते स्वामी जी एक धर्मान्ध व्यक्ति के हाथ से २३ दिसम्बर १९२६ को बलिदान हो गये। अभी वे बीमारी से पूर्ण स्वस्थ भी नहीं हो पाये थे कि एक धर्मान्ध व्यक्ति ने उन्हें गोलियाँ मार कर सदा के लिए सुला दिया। जब तक उनके द्वारा संस्थापित गुरुकुल कांगड़ी आदि संस्थाएँ हैं, तब तक स्वामी जी सदा के लिए अमर हैं।

स्वामी जी का जीवन भी बड़े सौभाग्य का जीवन था कि अपनी आयु के ७२वें वर्ष तक ही नहीं, अन्तिम घड़ी तक देश सेवा में लगे रहे।

स्वामी जी पहले अस्वस्थ हुए तब उनकी चिकित्सा दिल्ली के एक सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता डा० अन्सारी ने की थी। डा० अन्सारी की चिकित्सा से वे अभी लाभ ही कर पाये थे कि अचानक अब्दुल रशीद नामक एक मुसलमान युवक ने स्वामी जी

के पास आकर गोलियाँ चला दीं और स्वामी जी का अन्त कर दिया। इस सम्बन्ध में स्वामी जी के पुत्र प्रो० इन्द्र ने बड़े ही हृदयग्राही शब्दों में अपने पिता के बलिदान की कहानी लिखी है :—

"भाग्य का चक्र यह है कि एक मुसलमान ने उन्हें मौत के मुँह से बचाया और दूसरे ने गोली चला कर उन्हें मौत के घाट उतार दिया। परमात्मा की अद्भुत लीला ऐसे ही रूपों में अपने को प्रगट किया करती है। डा० अन्सारी और अब्दुल रशीद मनुष्य जाति के दो रोशन और स्याह पहलू हैं। जो मुसलिम सभ्यता डा० अन्सारी, मौलाना आजाद, स्व० हकीम अजमल खाँ को जन्म दे सकती है, उसकी कैसे निन्दा की जा सकती है।"

स्वामी जी का जीवन व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक रूप में पारायण करने योग्य है। युवावस्था में आनन्द और ब्रह्मचर्य की ऊँची-से-ऊँची साधना का सफल परीक्षण स्वामी जी का जीवन है। समाज के हित-चिन्तन के लिए किया गया उनका प्रयत्न गुरुकुल कांगड़ी के रूप में विद्यमान है।

स्वामी जी के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए एक बार रवि बाबू ने लिखा था : "सत्य के प्रति निष्ठा का आदर्श श्रद्धानन्द इस दुर्बल देश को दे गए। सत्य के प्रति श्रद्धा उनके चरित्र के द्वारा सार्थक आकार में देखने को मिलती है।"

यह स्वामी जी के तप-त्याग का ही फल था कि वह १२ महीने २४ घन्टे कमर कसे तैयार रहते थे। इस तपस्वी जीवन से आपको ऐसा डील-डौल और स्वास्थ्य प्राप्त हुआ

था। स्वामी श्रद्धानन्द का जन्म पंजाब के जालन्धर जिले के तलवन नामक ग्राम में फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी संवत् १९१३ में हुआ था। स्वामी जी के पिता का नाम नानकचन्द था जो १४ वर्ष की आयु से ही अपनी जीवन-लीला समाप्त होने तक पूजा-पाठ में अपना समय बिताने लगे।

स्वामी जी के पिता पुलिस में नौकर थे। इस नौकरी के कारण उन्हें इधर-उधर जाना पड़ता था। उनके साथ ही स्वामी जी को भी जाना पड़ता था। इस कारण शिक्षा-क्रम में भारी बाधा रही और स्वामी जी के बचपन का बहुत सा भाग खेल-कूद में ही बीता। जब आपके पिता बरेली नौकरी पर गये, तब स्वामी जी की माता तलवन से यहाँ आ गईं।

स्वामी जी के भाइयों के पढ़ाने के लिए इनके पिता ने एक मौलवी नियत कर लिया और यह आराम से खेल-कूद में समय बिताने लगे। स्वामी जी बचपन से ही कुशाग्र-बुद्धि थे। इस कारण खेल-कूद में मौलवी द्वारा दी गई अपने भाइयों की शिक्षा को आप थोड़ा-बहुत खेल-कूद में ही याद कर लेते थे।

स्वामी जी के पिता जिन दिनों नौकरी के कारण काशी में थे उन दिनों आपके शिक्षण के लिए एक शिक्षक रखे गये। वहाँ आपका रामायण के प्रति अनुराग बढ़ा जो बांदा में जाने पर भी जारी रहा। बाद में इनके पिता की बदली काशी हो गई। वहाँ पर आप काशी के प्रसिद्ध क्वीन्स कालेज में शिक्षा पाने लगे और दसवीं परीक्षा पास की। इसके बाद स्वामी जी का जीवन अनेक बुराइयों में बीता। बाद में फिर पढ़ने की इच्छा से उन्होंने प्रयाग के म्योर सैन्ट्रल कालेज में नाम लिखाया।

पर परीक्षा में सफलता न मिली और फिर मार्ग खोजने लगे। इन्हीं दिनों बरेली में सन् १६३६ में स्वामी दयानन्द पधारे। यहाँ उनका भाषण सुन कर स्वामी जी का हृदय बदल गया।

स्वामी जी का जन्म का नाम बृहस्पति था, किन्तु परिवार में मुन्शीराम तथा लाला मुन्शीराम कहलाये। जिम्मेदारी आ पड़ने पर तलवन से आकर जालन्धर में वकालत करने लगे और आर्य समाज का काम जोर-शोर से शुरू कर दिया। जालन्धर में आर्य समाज के पदाधिकारी की हैसियत से खूब काम किया और जब काम का चस्का लग गया तब एक ऐसी शिक्षण-संस्था खोलने का निश्चय किया जिसके द्वारा भारतीय संस्कृति के आधार पर शिक्षा दी जा सके। इस काम के लिए आपने धन-संचय के लिए देश का दौरा किया। गुरुकुल के लिए एक धनिक ने इन्हें भूमि भी प्रदान की। यह भूमि शिवालिक पर्वतमाला की उपत्यका में ज़िला बिजनौर के कांगड़ी नामक ग्राम में है, जिसको नजीबाबाद के एक वैश्य मुंशी अमनसिंह ने भेंट किया था। बाद में मुंशी अमनसिंह ने अपनी संचित सारी धन-राशि भी गुरुकुल को भेंट कर दी थी।

१६०२ में गुरुकुल खोला गया और उसके पहले विद्यार्थी स्वामी जी के पुत्र ब्रह्मचारी हरिश्चन्द्र तथा इन्द्र ही थे। इन दोनों पर गुरुकुल की शिक्षा प्रणाली का प्रयोग किया गया।

स्वामी जी ने गुरुकुल के अतिरिक्त स्त्री-शिक्षा तथा हिन्दी के प्रचार के लिए पत्र-पत्रिकाओं का भी प्रकाशन कराया। उन के प्रयत्न का यह फल निकला कि अधिकांश हिन्दी पत्रों के सम्पादन में उनके अनुयायियों का योग रहा।

स्वामी जी ने राष्ट्रीय आन्दोलन में खूब काम किया। कांग्रेस के अमृतसर अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष स्वामी जी ही थे और स्वामी जी ने उसकी अधिकाँश कार्यवाही हिन्दी में करा कर एक नया मार्ग प्रशस्त किया था। स्वामी जी की राष्ट्रीयता का इतना सम्मान था कि उनका भाषण प्रसिद्ध जामा मस्जिद में मुसलमानों ने आग्रह करके कराया था। लाला लाजपतराय, महात्मा गांधी, मालवीय जी के आप अनन्यतम सहयोगी रहे। हिन्दी के लिए सेवा करने के उपलक्ष्य में आपको हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के भागलपुर अधिवेशन का अध्यक्ष बनाया गया। राष्ट्रीय आन्दोलन की एक घटना तो सदैव इतिहास में अंकित रहेगी। दिल्ली में अंगरेज़ी सत्ता के विरुद्ध अभूतपूर्व हड़ताल थी। स्वामी जी ने जब सुना कि पुलिस ने एकत्रित जनता पर गोली चल रही है तब आप उत्तेजित जनता को कम्पनी बाग में ले आये और उसे किसी प्रकार शान्त रखा।

कुछ समय बाद चीफ कमिश्नर घुड़सवारों के साथ आये और मशीनगन लाकर खड़ी कर दी। स्वामी जी ने चीफ कमिश्नर से कह दिया कि यदि आपके आदमियों ने जनता को उत्तेजित किया तो मैं शान्ति-रक्षा का जिम्मेदार नहीं हूँ। इसी शान्त जन-समूह को साथ लिए जब आप घन्टाघर पर आये तब दो गोरों ने आपकी छाती पर किर्च तान दी और घमंड से बोले कि हम तुमको नहीं छोड़ेंगे। स्वामी जी ने एक हाथ से उत्तेज़ित जनता को शान्त करते हुए और दूसरे हाथ से अपनी ओर गोरे को संकेत करते हुए कहा कि "मैं खड़ा हूँ गोली

मारो।"इतने में आठ-दस किर्चें और छाती पर तन गईं। दूसरी ओर जनता कहने लगी, 'पहले हम मरेंगे, आप नहीं' कहती हुई जनता आगे बढ़ रही थी। तब भी स्वामी जी जनता के कोप को शान्त करते रहे। किर्चें स्वामी जी के वक्ष में जा लगीं, इसी बीच में एक घुड़सवार अंग्रेज के उधर आ निकलने से दिल्ली के इतिहास में 'रक्तभरी लेखनी से लिखी जाने वाली एक घटना घटने से शेष रह गई।

भारतरत्न महर्षि अन्ना साहब कर्वे इस युग के उन दीर्घायु प्राप्त महापुरुषों में अकेले जीवित हैं जिन्होंने अपने १०० वर्षों के जीवन-काल में लगभग ८० वर्ष जन-सेवा में ही बिताये हैं। निर्बल शरीर एवं संकोची स्वभाव के होने के बाद भी श्री कर्वे शिक्षा-प्रसार, विधवा-विवाह, महिला-जागरण आदि समाज के कल्याणकारी कार्यों में महत्वपूर्ण योग प्रदान करते रहे हैं।

श्री कर्वे का भारतभूमि पर अवतरण १८ अप्रैल १८५८ को हुआ था। जिन दिनों भारत में स्वाधीनता की प्रथम लड़ाई लड़ी जा रही थी उन दिनों महर्षि कर्वे का जन्म हुआ।

श्री कर्वे मूक-भाव से डट कर काम करना जानते हैं। सामाजिक क्रान्ति के लिये क्या करना चाहिए इसके लिए किसी पुस्तक को पढ़ने की आवश्यकता उन लोगों को अनुभव नहीं होगी जो श्री कर्वे के जीवन-दर्शन और उनके क्रिया-कलापों से परिचित हैं। जिस देश में पेट के लिये मुट्ठी-भर अन्न जुटाने के लिए बड़ा साहस करना पड़ता है उस देश में समाज-सुधार, समाज-कल्याण का नाम लेना और उस मार्ग को जीवन का मुख्य अंग मानकर केशव कर्वे-जैसे महान् साधकों

का कार्य कहा जा सकता है।

केशव-कर्वे रत्नागिरि जिले के शेरवली नामक ग्राम में एक अत्यन्त निर्धन परिवार में पैदा हुए। गरीबी में किस प्रकार जीवन के साधनों को संचय करना पड़ता है, ये अपने पारिवारिक जीवन में उसकी पूरी क्रियात्मक रूप से शिक्षा ले चुके थे। यही कारण था कि कर्वे जी का जीवन पर-दुःख-कातरता से सदा दयार्द्र रहा। महर्षी कर्वे को कठिनाइयों में विद्याध्ययन करना पड़ा। आज के युग के विद्यार्थी जहाँ शिक्षा पाने में अनेक प्रकार के सुख-साधनों का आश्रय लेते हैं वहाँ श्री कर्वे को १० मील प्रतिदिन पैदल चलकर दसवीं की परीक्षा देने जाना पड़ा था। परीक्षा में डाक्टर सम्पूर्णानन्द की तरह कम आयु होने के कारण परीक्षा में न बैठने दिये जाने पर भी आपका उत्साह भंग नहीं हुआ, वरन् तत्परता से अपने-शिक्षण कार्य में जुट गये। अपने गाँव से बम्बई जाकर आपने एलफिन्सटन कालेज से बी० ए० परीक्षा पास की। इस कालेज में शिक्षा पाने का कर्वे जी को एक यह भी लाभ मिला कि उनके एक सहपाठी बड़े कुशाग्र-बुद्धि थे। उनके साथ रहकर कर्वे जी को अपना जीवन बनाने का और भी सुअवसर मिला। कर्वे जी कालेज में साथ पढ़ने वाले छात्र देश-गौरव गोपाल कृष्ण गोखले थे जिन्होंने कर्वे जी की तरह से अपना सारा जीवन देश-सेवा, शिक्षा, उन्नति, समाज-सुधार के काम में बिताया। इन्हीं गोखले जी की सहायता से महात्मा गांधी को आगे बढ़ने का अवसर मिला।

उन दिनों पूना भारतीय सामाजिक एवं शैक्षणिक क्रान्ति

का केन्द्र माना जाता था। पूना की भूमि महात्मा फूले, महादेव गोविन्द रानाडे, जैसे समाज-द्रष्टाओं की प्रयोग-शाला बनी हुई थी। इसी प्रयोगशाला में सेवाभावी, श्रमनिष्ठ कर्वे ने अपनी प्रक्रियाएँ प्रारम्भ कीं। उस समय हमारे समाज में विधवा-विवाह एक घोरतम पाप समझा जाता था, किन्तु सामाजिक क्रान्ति के इस साधक ने समाज और परिवार की संकुचित सीमाओं को तोड़कर अपनी पत्नी की मृत्यु हो जाने पर विधवा-विवाह किया। इस कार्य में इन्हें गाँव वालों, रिश्तेदारों तथा यहाँ तक कि माता-पिता तक से तिरस्कृत होना पड़ा। इस घटना के बाद उन्होंने अपने जीवन का एक मात्र लक्ष्य विधवा-सेवक बनाकर पूना से ४ मील दूर हिंगरा नामक स्थान पर हिन्दू-विधवाश्रम की स्थापना की। श्री कर्वे ने विधवाओं के उद्धार का निश्चय किया और विधवाओं को समर्थ एवं स्वावलम्बी बनाने की दिशा में प्रयत्न किया। यद्यपि इस स्वावलम्बन को प्राप्त करने में घास-फूस से बने उस आश्रम की निवासिनी विधवाओं ने अनेकों असुविधाओं एवं साधनहीनताओं के कारण इसे कठोर कारावास भले ही अनुभव किया हो किन्तु पतिव्रता के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचने का गर्व भी उन्होंने यहाँ अनुभव किया। यही कारण है कि अब इस संस्था की ख्याति सारे भारतवर्ष में है।

विधवा-उद्धार के साथ में ही श्री कर्वे ने महिला विद्यापीठ की स्थापना की। इस योजना से प्रभावित होकर एक धनी ने १५ लाख रुपया सहायता के रूप में विद्यापीठ को प्रदान किया। अपने इस लक्ष्य को पूर्ण रूप से फलीभूत करने की

दृष्टि से महर्षि कर्वे ने देश-विदेश का दौरा किया। महात्मा गांधी ने भी इस विद्यापीठ की सेवा की सराहना की थी। महात्मा गाँधी जी ने इस नारी जागृति और स्त्री-स्वातन्त्रय के पूजनीय प्रयोग के चमत्कार को नमस्कार भी किया था। आज यही विद्यापीठ कर्वे यूनिवर्सिटी नाम से विश्व में प्रसिद्ध है।

भारत के निष्काम कर्मयोगियों में इस युग के सबसे बड़े व निष्काम कर्मयोगी श्री कर्वे जी का जीवन किसी भी साधक के लिये दिव्य प्रेरणा, उत्साह व जीवन देने वाला है।

इनके बचपन की एक घटना इस प्रकार है—"जब ये पाँचवीं कक्षा में पढ़ते थे, तभी से ये प्राप्त होने वाली छोटी-सी निधि में से एक पैसा प्रति रुपये के हिसाब से दान-धर्म के लिये सुरक्षित रखने लगे थे। कुछ समय बाद इनके पास तीन रुपये एकत्र हो गये।"

श्री कर्वे के पर-दुःख-कातर हृदय का स्पष्ट परिचायक एक हृदयस्पर्शी प्रसंग उनके शब्दों में ही सुनिये:—"बचपन में बम्बई में श्री नागोपंत दातार के भोजनालय में मैं भोजन करने जाता था। कुछ समय बाद ये नागोपंत क्षय रोग से पीड़ित होकर मुरूड़ गाँव में आयें। उनकी स्थिति अत्यन्त चिंताजनक हो गई थी और दिखता था कि एक महीने से अधिक वे जीवित नहीं रह सकेंगे। उन्होंने बम्बई में मुझसे पाँच रुपये उधार लिये थे। घोर दरिद्रता के कारण वे रुपया बिना लौटाये मुरूड़ चले गये थे। छुट्टियों में मैं मुरूड़ गया तो समाचार लेने उनके घर पहुँचा। उनका सारा परिवार अत्यन्त दुःखी बैठा था। मुझे देखकर नागोपंत को

बहुत बुरा लगा। उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या तू अपने पैसे लेने आया है ?

मैंने वे तीन रुपये उसके सामने रखते हुए कहा—'तुम्हारे वे रुपये तो मुझे मिल ही गए यही समझो और यह तीन रुपए लो। इस संकट काल में तुम्हें रुपए की बड़ी आवश्यकता है।'

यह सुनते ही नागोपंत का सारा भाव ही बदल गया। उनकी आँखों से आनन्दाश्रु बहने लगे। परोपकारी होने वाले आनन्द का थोड़ा-सा अनुभव मुझे उस दिन मिला।

यह प्रसंग है तो छोटा-सा और तीन रुपए की क्या बिसात। पर यह छोटा-सा प्रसंग श्री कर्वे की करुणा, दया, पर-दुःख-कातरता व त्याग आदि का एक श्रेष्ठ उदाहरण है।

महर्षि कर्वे का शताब्दी महोत्सव १८ अप्रैल १९५८ को समस्त भारत में उत्साह-पूर्वक मनाया गया। इस अवसर पर देश-विदेश के असंख्यों नेताओं तथा समाज-सेवकों ने इन्हें बधाई दी। स्वराष्ट्रमन्त्री श्री गोविन्द वल्लभ पंत ने अपने सन्देश में कहा कि कर्वे ने भारतीय स्त्रियों को शिक्षा देने तथा उन्हें समाज में ऊँचा स्थान दिलाने के लिये जो महत्वपूर्ण कार्य किया है उसके लिये देशवासी उनके आजन्म आभारी रहेंगे। प्रधान मंत्री श्री नेहरू इस अवसर पर स्वयं उपस्थित हुए और श्री कर्वे को बधाई देते हुए कहा कि महर्षि कर्वे वास्तविक सन्त हैं और प्राचीन काल के सन्तों का स्मरण दिलाते हैं।

★

रवि बाबू के जीवन में बाल्य-काल से ही भावुकता एवं विचारशील भावना का स्थान था। यही कारण है कि उनके बाल्य-जीवन ही में उनके हृदय में जो काव्य के अनुकूल उदात्त भावनाओं का विकास हुआ उससे वे अपने जीवन के अन्तिम काल तक विश्व के महान् कवि बन सके। रवीन्द्र साहित्य में भारतीय जीवन का सही अर्थों में मूल्यांकन किया गया है। उनकी सदैव यही कामना रही कि जिन रूढिवादी समस्याओं ने हमें जकड़कर जड़कर दिया है उन्हें तोड़कर यथार्थ जीवन में प्रवेश करें। बंग-साहित्य में उनका आविर्भाव ऐसे समय में हुआ कि जिस समय नूतन एवं पुरातन, आशा और अन्धकार, जीवन और जिज्ञासा के संघर्ष में मानवीय जीवन धीरे-धीरे उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा था। उस समय बंगाली साहित्य में एक तरह से बाल-सूर्य की किरणें प्रकाशित हो रही थीं, जैसा कि उन्होंने अपनी एक कविता में लिखा है।

रवीन्द्र के समान ऐसे कुशल शब्द-शिल्पी संसार में बहुत कम लोग हुए हैं जिनकी कई क्षेत्रों में समान प्रतिभा विकसित हुई हो। संगीत, कहानी, उपन्यास, नाटक, कविता आदि

का कौन-सा ऐसा क्षेत्र है जिसमें उन्होंने पूरी सफलता न पाई हो। आधुनिक युग में रवि बाबू भारतीय साहित्य में ही नहीं विश्व-साहित्य में भी एक प्रकाशवान स्तम्भ की तरह से मार्ग-दर्शन करते हुए दिखाई देते हैं।

कविवर रवीन्द्र का जीवन साधना, तपस्या एवं आदर्श का सम्मिश्रण था। उन्होंने अपने जीवन में समस्त प्रतिभाओं का समावेश करके अपने को एशिया के महापुरुषों में लाकर खड़ा कर दिया था। रवि बाबू न केवल कवि, नाटककार, कहानीकार एवं उपन्यासकार ही थे वरन् वे सुधारक-स्वातन्त्र्य प्रेमी, भारतीय संस्कृति के प्रथम रक्षक मनस्वी तथा शिक्षा-शास्त्री भी थे। उन्होंने लार्ड मेकाले की शिक्षा-पद्धति के विरुद्ध अपना शान्ति-निकेतन स्थापित किया था, जिस पर आज भी भारत को गर्व है। वहाँ उस समय पुराने भारतीय विश्वविद्यालयों के समान देश-विदेश के छात्र शिक्षा पाते हैं। आज शान्तिनिकेतन का अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षण-संस्थाओं में महत्वपूर्ण स्थान है और एशिया की तो वह सबसे पहली शिक्षण संस्था है जहाँ मानवीय कलाओं का बिना भेद-भाव शिक्षण होता है।

बंगीय साहित्य में रवि बाबू का अवतार एक महाकवि के रूप में हुआ और वे बीसवीं सदी और उससे पहले के युग के युग-कवि रहे। रवि बाबू के समय तक बंग-भाषा पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पाई थी, उसमें अभी प्रसिद्ध सुधारक राजा राम मोहन राय का तुतलाता हुआ गद्य चल रहा था। उसी समय रवि बाबू का जन्म बंगाल के एक प्रसिद्ध घराने में (जो राजा राम मोहन राय द्वारा प्रवर्तित ब्रह्म समाज का नेतृत्व कर

रहा था) महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के यहाँ ६ मई सन् १८६१ को हुआ था। कुछ बड़े होने पर जब वे स्कूल में भेजे गये, तो उनका मन पढ़ाई में नहीं लगा। इसी प्रकार नार्मल स्कूल तक जा पहुँचे, पर शिक्षा की ओर उनकी प्रवृति न होकर दूसरी ओर ही बढ़ती रही और उन्होंने सबसे प्रथम 'पमार छन्द' में एक कविता सात वर्ष की अवस्था में लिखी।

रवि बाबू का पालन-पोषण नौकरों द्वारा हुआ था। बंग-भाषा के साथ ही उन्हें अंग्रेजी भी पढ़ाई जाने लगी थी। ये अपनी रंगीन कापियों पर प्रकृति सौन्दर्य की छाप कविता द्वारा रचने लगे। रवि बाबू की अधिकतर कविताएँ नदी आदि प्राकृतिक दृश्यों पर ही हैं। इसलिए इन्हें विदेशी साहित्यिक 'नदी की कविता करने वाला' कहते हैं। रवि बाबू की सबसे प्रथम कविता 'कवि-कथा' के नाम से प्रकाशित हुई और बाद में 'बन-फूल' नाम से एक कविता-संग्रह प्रकाशित हुआ। रवि बाबू शैली कवि को पसन्द करते थे। सोलह वर्ष की आयु में उन्होंने कुछ ऐसे अच्छे पत्र भी लिखे, जो साहित्यिक महत्व रखते हैं। आलोचना के क्षेत्र में भी वे १६ वर्ष की आयु में ही उतर आए थे। उन्होंने उस समय 'मेघनाद-वध' की आलोचना लिखी थी।

रवि बाबू ने सबसे पहले 'करुणा' उपन्यास लिखा। इस में संसार की विषम अवस्थाओं का चरित्र-चित्रण किया गया था। १८२७ के समय उनकी प्रतिभा पूर्ण विकसित हो गई थी और उस समय इन्होंने 'सन्ध्या-संगीत' नाम की एक पुस्तक लिखी थी, यह पुस्तक उनका यश प्रसारित करने में

विशेष सहायक हुई। कविता भी उनकी बड़ी मार्मिक और प्रभावशाली थी। भाव प्रवाहमय 'नलिनी' जैसे कुछ दुःखान्त नाटक भी लिखे थे।

रवि बाबू एक समय बंकिमचन्द्र के समान बंगीय साहित्य के सर्जक बन गए थे। बंकिम बाबू ने विधवा-विवाह के आदर्श की सृष्टि की थी तो उनके प्रतिद्वन्द्वी रवि बाबू ने बाल-विवाह के विरुद्ध लोहा लिया था। इसके बाद एक और पुस्तक निकली और उसके अनन्तर उनकी कविता आध्यात्मिक जगत् से सम्बंध रखने लगी। 'चित्रांगदा' नाटक भी हलचल मचाने वाला सिद्ध हुआ। इसके बाद रवि बाबू और भी लोकप्रिय हो गए। १८८७ ई० से १९०० तक उनकी चार-पाँच प्रसिद्ध पुस्तकें निकलीं।

उपन्यास-कला में भी रवि बाबू किसी से पीछे नहीं रहे। उन्होंने 'गौरा' और 'चार अध्याय' आदि उपन्यास लिखकर इस क्षेत्र में काफी प्रशंसा पाई।

'गीतांजलि' रवि बाबू की अनुपम रचना है जिससे उनका गौरव विदेशों में भी फैल गया। इन्हें उस पर वह प्रसिद्ध 'नोबल पुरस्कार' मिला जो अब तक दो-तीन ही भारतीयों को मिला है।

रवि बाबू कुशल साहित्य-निर्माता, सफल संगीतकार और अभिनेता थे। आपने कई नाटकों का स्वयं ही अभिनय किया है।

रवि बाबू बापू की तरह सदा अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहे। उन्होंने समय-समय पर अपने साहित्य एवं विचारों द्वारा भारत

के स्वातन्त्रय-संग्राम में सहयोग दिया। इन्होंने जलियाँवाला बाग के भयानक नरमेध के समय सरकार से मिली हुई 'सर नायटहुड' की उपाधि बड़े विरोध के साथ लौटा दी थी। रवि बाबू ने अनेक बार अंग्रेज अधिकारियों के साथ दम्भपूर्ण वक्तव्यों का करारा जवाब दिया। समय-समय उनका विदेशोंमें आना-जाना रहा और वे जिस-जिस देश में भी गये, वहाँ-वहाँ ही उनका सम्मान शाही-सम्राटों के समान होता रहा।

द्वितीय महायुद्ध के समय जापान आदि देशों ने कविवर से परामर्श किया था। वे १९४१ की श्रावणी के दिन अचानक ही हमारे बीच से उठ गए। आज हमें उनके वे शब्द याद आ रहे हैं, जो उन्होंने अपनी मृत्यु से पहले एक अंग्रेज महिला की गर्वोक्ति पर कहे थे।

उनके यह शब्द आज भी हमारे कानों में गूँज रहे हैं—"अंग्रेज भारत को इतना जीर्ण-शीर्ण करके छोड़ जायँगे कि उसका सँभालना कठिन हो जायेगा।" आज हमें यही नजर आ रहा है।

इस सर्वतोमुखी प्रतिभा वाले नर-रत्न को खोकर भारत अनाथ हो गया। काश! आज रवि बाबू होते तो हमारे देश की कला और संस्कृति न जाने कहाँ पहुँची होती!!

★

२५ दिसम्बर सन् १८६१ को प्रयाग में एक महापुरुष का जन्म हुआ था। इस महापुरुष का नाम था—मदनमोहन मालवीय। यह वह पवित्र दिन था जिस दिन आज से ठीक १८६१ वर्ष पहले बैथलहम में महात्मा ईसा ने जन्म लिया था।

मालवीय जी महाराज इस दीर्घ जीवन में देश-भक्ति के संकट मिटाने में निरंतर प्रयत्नशील रहे। लगभग ६० वर्ष तक वे राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस के नेताओं में रहे। चार बार वे राष्ट्रीय कांग्रेस महासभा के सभापति निर्वाचित हुए। इसी प्रकार वे हिन्दू महासभा के जनक और नेता थे। उसमें जीवन संचार करने में जो काम इन्होंने किया, वह किसी से छिपा नहीं है।

मालवीय जी महाराज निजी आर्थिक उपार्जन के सम्बंध में सदा निस्पृह और निरीह रहे। यदि वे चाहते तो बड़ी सुविधा के साथ अपना स्थान देश के प्रमुख वकीलों में बना कर अधिक अर्थोपार्जन कर सकते थे। जो व्यक्ति सर तेजबहादुर सप्रू-जैसे साधारण वकील को गाँव से बुलाकर देश के प्रमुख वकीलों में खड़ा कर सकता था, वह चाहता तो क्या स्वयं वैसा नहीं हो सकता था। किंतु मालवीय जी का एक-मात्र

जन्म परमात्मा ने भारत की सेवाओं के लिए एक वरदान के रूप में ही दिया था।

मालवीय जी महाराज को कोरा राजनीतिक ही समझ बैठना भूल होगी। वे भारत के प्रथम पत्रकार थे, जिन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन चलाने और उसे बल देने के लिए ही देश में अखबारों को प्रकाशित करने की आवश्यकता समझी और इस ओर सक्रिय पग उठाया। उनकी प्रेरणा से 'लीडर', 'हिन्दुस्तान टाइम्ज्', 'अभ्युदय', 'सनातनधर्म' आदि पत्रों का प्रकाशन आरम्भ हुआ, जिनके आशीर्वाद से आज भी यह पत्र पल्लवित, पुष्पित होकर जनता का पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं। यद्यपि आज उनके आदर्शों और उनके सिद्धांत वे नहीं रहे, जो उनके जन्म के समय थे।

प्रयागराज के परम भागवत पंडित ब्रजनाथ व्यास के घर सौभाग्यवती पूनादेवी की कोख से पंडित मदन मोहन मालवीय जी का जन्म पौष कृष्णा अष्टमी, बुधवार संवत् १९१८, तदनुसार २५ दिसम्बर १८६१ में हुआ था। इनके पूर्वज मालवा के रहने वाले थे, इसी से मालवीय कहलाने लगे। जब वहाँ ब्राह्मणों का आपसी मनमुटाव हो गया तो कुरहरा तथा अन्य कई गाँवों के कई परिवार तीर्थ-यात्रा को निकल पड़े। उनमें से १५० घर मिर्जापुर में और ५० घर भारती भवन प्रयागराज में और अब बनारस तथा दूसरे कई स्थानों में फैले हुए हैं।

मालवीय जी अपने पिता की आठ सन्तानों में से पाँचवें थे। आरम्भ में अपने दादा और पिता जी से नित्य श्लो..,

भजन, स्तोत्र और गीत सुनते थे इसलिए वे सब आपको कंठस्थ हो गये थे। घर पर ही उनकी संस्कृत की शिक्षा आरम्भ हुई। पास में ही अहिल्यापुर में धर्म-ज्ञानोपदेश पाठशाला थी। वे पहले-पहल इसमें भेजे गये; फिर विद्याधर्म प्रचारणी पाठशाला में पढ़ने लगे थे। कभी-कभी जब देवकीनन्दन इन्हें पाठशाला में ले जाकर एक मूढ़े पर खड़ा कर देते; तब सात वर्ष का बालक धार्मिक श्लोक साधारण जनता को सुनाना आरम्भ कर देता था। उस समय बड़ी भीड़ लग जाती थी। प्रातःकाल और सन्ध्याकाल वे नित्य संध्या करते थे। इनके ब्रह्मचारी वेश को देख कर कभी-कभी इनकी माता को सन्देह हो जाता था कि कहीं यह साधु न बन जाये।

मालवीय जी बचपन से नटखट और खिलाड़ी थे। स्वभाव उनका बहुत चंचल था। वे गुल्ली-डंडा खेलते थे और व्यायाम के बड़े शौकीन थे। होली के दिनों में जो मिलता, उसे रंग देते थे। रंगभरी पिचकारी लिये हुए घूमते रहते थे। जन्माष्टमी के उत्सव में वे बड़ी सुन्दर झाँकी बनाते थे, जिससे दिन भर और रात्रि में बड़ा मेला लगा रहता था। कवि, संगीत-प्रेमी और सितार बजाने में बड़े चतुर थे।

एक बार वे अपने चाचा के यहाँ मिरजापुर गये। वहाँ पंडितों की एक सभा में शास्त्रार्थ हो रहा था। इन्होंने उस शास्त्रार्थ में भाग लिया। सब ने बड़ी प्रशंसा की। पंडित नन्दराय जी ऐसे मुग्ध हुए कि उन्होंने अपनी तीसरी लड़की का सम्बन्ध इनसे करके इनको अपना दामाद बनाने का निश्चय

कर लिया। मालवीय जी १५ वर्ष ही के थे कि इनका विवाह हो गया और सदैव एक स्त्री-व्रत के पालक रहे।

१८ वर्ष की अवस्था में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करके आपने म्योर सैन्ट्रल कालेज से बी० ए० तक शिक्षा पाई। जब आप कालेज में पढ़ते थे तब इनको संस्कृत पंडित आदित्यराम पढ़ाते थे। एक बार जब 'अभिज्ञानशाकुन्तल' नाटक खेला गया तो उसमें मालवीय जी ने ही शकुन्तला का अभिनय किया था। अंग्रेजी नाटक 'मरचैण्ट आफ वैनिस' खेला गया, तो उसमें पोर्शिया का मुग्धकारी अभिनय आपने ही किया था। सब उन्हें अंग्रेजी लेडी समझने लगे थे। एक बार विवाद-समिति स्थापित की गई थी, उसके वाद-विवाद में भाग लेते थे। हिन्दू-हितों पर भाषण होते थे। उस समय आपके विचार सुनकर सब चकित हो जाते थे।

मालवीय जी ने महात्मा गान्धी से लेकर राष्ट्र के सभी उच्च कोटि के नेताओं को राष्ट्रीय आन्दोलन में सहयोग दिया। मालवीय जी एक आदर्श तपस्वी युग-पुरुष थे। जिन दिनों उनके जीवन में धन का पूर्णाभाव था उस समय भी वे आदर्श से नहीं डिगे। जो लोग उस घटना को जानते हैं कि जब मालवीय जी की भाषण शैली पर मुग्ध होकर स्वयं राजा रामपाल सिंह कालाकांकर नरेश ने अपने 'हिन्दुस्तान' पत्र का सम्पादक बनाया था, तब मालवीय जी ने कहा था कि इस कार्य के लिए मेरी एक शर्त रहेगी—यदि आपने किसी दिन मद्यपान किये हुए मुझे बुलाया तो उसी दिन से मैं आपके यहाँ नहीं रहूँगा। अन्त में एक दिन ऐसा भी आया जब राजा

रामपालसिंह ने उन्हें ऐसी दशा में बुला लिया। मालवीय जी अपन साथ तय की गई शर्तों के विरुद्ध व्यवहार देखकर एक क्षण भी राजा साहब के पास न रहे। उन दिनों मालवीय जी को राजा साहब से २५० रुपये मासिक मिलते थे, परन्तु उन्होंने उस धन की चिन्ता न करके अपने आदर्शों का ध्यान रखा। इससे पहले वे पचास रुपये के साधारण अध्यापक थे। यह दृश्य सामने होते हुए भी मालवीय जी अपने आदर्श से विचलित न हुए। 'हिन्दुस्तान' का सम्पादन उन्होंने जिस योग्यता से किया, यह वे दिवंगत आत्माएँ अपनी वाणी और लेखनी से कई बार सराहना कर चुकी हैं जो मालवीय जी के प्रेम में पग कर 'हिन्दुस्तान' के सम्पादन-कार्य में सहयोग देने आये थे उनमें स्वर्गीय लाला प्रतापनारायण मिश्र और बालमुकुन्द गुप्त उल्लेखनीय हैं।

मालवीय जी जीवन-भर सत्य, न्याय और परस्पर सौहार्द्र, पर-दुःख-कातरता आदि से प्रभावित रहे और इनके लिए जो सेवा भी वह कर सकते थे उन्होंने की। इन्हीं विशेषताओं को 'लीडर' के प्रधान सम्पादक श्री सी० वाई० चिन्तामणि ने एक बार लिखा था कि महात्मा गांधी के मुकाबले में अगर कोई व्यक्ति खड़ा किया जा सकता है तो वह अकेले मालवीय जी महाराज हैं और बहुत से मामलों में वह उनसे भी बढ़ कर हैं।

देश की नैया के खिवैया

मालवीय जी के जीवन में जब तक साँस रही तब तक वे देश की उन्नति के लिए प्रयत्नशील रहे। प्रसिद्ध इति-

हास-लेखक डा० पट्टाभि सीतारमैया ने 'कांग्रेस के इतिहास' में लिखा है कि "सभी अपवादों को छोड़कर मालवीय जी उन राष्ट्रीय महापुरुषों से में एक हैं जो साठ वर्ष तक किसी-न-किसी रूप में कांग्रेस की नैया को खेने में साथ रहे। मालवीय जी वृद्ध थे या युवा, यह बात उन पर कभी भी लागू नहीं की जा सकती। जब तक वे जीवित रहे एक देश-भक्त युवक के समान उनका उत्साह रहा। उन्होंने काशी-विश्वविद्यालय के अतिरिक्त हजारों संस्थाओं को स्थापित कराया था।

'नागरी प्रचारिणी सभा' और 'हिन्दी साहित्य-सम्मेलन' के संगठनकर्त्ताओं में मालवीय जी अग्रगण्य थे। पूना में जब महात्मा जी ने आमरण अनशन किया, उस समय उस अनशन को समाप्त कराने में मालवीय जी ने प्रमुख योग दिया। मालवीय जी का जनता और सरकार दोनों में बरा-बर सम्मान था। उनके पास प्रतिदिन जो बहुत-से पत्र आते थे उनसे पता लगता है कि उनसे जनता क्या आशाएँ रखती थी और वे उनकी किस प्रकार पूर्ति करते थे। कोई सर्दी में उनसे रजाई चाहता हो, कोई अपनी कन्या के विवाह के लिए धन चाहता हो, किसी के लड़के का प्रवेश उनकी सहा-यता से होता हो, तो उनके दरबार में सबको आने की छूट थी यह बात उनके निवास-स्थान पर ही नहीं, रास्ते में जाते हुए भी उनकी विनम्रता से लोग लाभ उठाते थे। अतः ऐसा कोई ही अवसर रहा होगा जब मालवीय जी की गाड़ी लेट न रही हो। अनेक बार गाड़ी उनके लिए एक-एक घण्टा रोकी गई। इस सम्बन्ध में वह परमात्मा पर पूर्ण विश्वास रखते थे।

और कहते थे कि मैं ही लेट नहीं हूँ, गाड़ी भी लेट जायगी। यह मालवीय जी का जीवन-दर्शन है जिससे यह जाना जा सकता है कि उन्होंने अपना जीवन जन-जन के कल्याण के लिये लगा दिया। उन्हें विश्वविद्यालय के छात्रों की उतनी ही चिन्ता थी जैसे जितनी कि अपने परिवार के लोगों की और उनका घर अन्नपूर्णा का अक्षय भण्डार था जहाँ हर समय अतिथि का सत्कार होता था।

देश में स्कूल, कालेजों की कमी न थी, किन्तु मालवीयजी के हृदय में एक विशेष तड़पन थी। वे चाहते थे कि भारतीय संस्कृति के अनुकूल एक ऐसा आदर्श विद्यालय स्थापित किया जाय जहाँ मनु का यह वाक्य चरितार्थ हो सके :—

एतद्देश प्रसूतस्य एकाशादग्र जन्मनः।
स्वं-स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पथिव्यां सर्वं मानवा :॥

इस आदर्श की पूर्ति के लिये मालवीय जी महाराज ने जो स्वप्न देखा था उसका क्रियात्मक रूप विश्वविद्यालय है। देश और काल की गति के साथ इस धर्म में उन्हें कितनी सफलता मिली या नहीं, यह तो विचारणीय प्रश्न है किन्तु इतना सत्य है कि मालवीय जी ने जो स्वप्न देखा था उसका मूर्तिमान स्वरूप हिन्दू विश्वविद्यालय है।

हिन्दी को राष्ट्र-भाषा पद पर अभिषिक्त कराने का स्वप्न देखने वालों में बहुत से महापुरुष दिवगंत हो चुके किन्तु उसके लिए आंदोलन करके, ब्रिटिश शासन-कर्त्ताओं से संघर्ष करके अंग्रेजी के दुर्ग में प्रवेश कराने का कार्य मालवीय जी का था।

आज हिन्दी की उन्नति में उनका जो मूल्यवान प्रयत्न रहा, वह कदापि नहीं भुलाया जा सकता।

मालवीय जी महाराज ने अपने देश की उन्नति के लिए बहुत-से स्वप्न देखे थे। उनके स्वप्न का मूर्तिमान साकार रूप नई दिल्ली का श्री लक्ष्मीनारायण (बिरला) मन्दिर भी है। बिरला-बन्धुओं को इस प्रकार का परामर्श देने वाले मालवीय जी ही थे। इस मन्दिर को देखकर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि वह भारत की उन्नति और उसकी संस्कृति के विकास के लिए क्या स्वप्न देखते थे। देश में स्काउट-आन्दोलन, स्वदेशी आन्दोलन, गोरक्षा-आन्दोलन, अछूतोद्धार आन्दोलन आदि को उन्होंने अपने जीवन में सफल बनाया। अपने धर्म और आदर्श के लिए उन्होंने सदैव अपने दैनिक व्यवहार को भी इसके अनुरूप रखा। वे केवल दूसरों को उपदेश देना ही नहीं जानते थे वरन् स्वयं अपने जीवन में चरितार्थ करते थे। उनका स्वप्न था कि "समस्त देश सुसंगठित हो, गाँव-गाँव में पाठशालाएँ खुलें, स्त्रियों का सम्मान हो, किसी को सताया न जाये और प्रत्येक देशवासी यह स्मरण रखे कि किसी को बुरा कहने का फल बुरा होता है। परमात्मा में विश्वासपूर्वक सभी धर्मों में निष्ठा रखना श्रेष्ठ पुरुषों का संग करके अपनी मातृभूमि को जिसमें राम, कृष्ण, महावीर बुद्ध, ऋषि-मुनियों, आचार्यों ने जन्म लिया है, प्राणों से भी अधिक प्यारा मान कर उसकी रक्षा करे।' यह कामना मालवीय जी महाराज की थी। और उन्होंने इस राष्ट्र को सब प्रकार से उन्नत और शक्तिशाली बनाने का स्वप्न देखकर अपने जीवन के ६५ वर्षों को दाव पर लगाया

था। जीवन-भर वे जिस कार्य में संलग्न रहे उसे अन्तिम दिनों तक भी वे भुला न पाये। जब ८५ वर्ष की आयु में जब वे रोग-शैया पर थे तब उन्होंने समाचार-पत्रों में पढ़ा कि ब्रिटेन के कुछ प्रभावशाली व्यक्ति भारत की स्वाधीनता के सम्बन्ध में विचार-विनिमय करने के लिए दिल्ली आये हुए हैं। वे अत्यन्त अस्वस्थ होते हुए भी अपने चिकित्सक के मना करने और गान्धी जी के अनुरोध को टालकर भी १८ अप्रैल सन् १९४६ के लगभग दिल्ली आये। मालवीय जी का दिल्ली में आगमन सुनकर अपनी प्रार्थना-सभा से लौटकर महात्मा गांधी मालवीय जी से मिलने गए। जब दोनों महापुरुष गले मिले, उस समय का दृश्य इतिहास में अलौकिक स्थान रखता है। जब गान्धी जी ने उनसे कहा कि आप इस दशा में अपनी चिन्ता मुझे दे दीजिए और आराम से अपनी आयु के दिन पूर्ण कीजिए तब मालवीय जी ने कहा था कि "मैं दिल्ली इस लिए आया हूँ ताकि देश की स्वाधीनता का सौदा भारत-विभाजन से न हो। और ऐसा विश्वास जब महात्मा गान्धी ने उन्हें दिया कि हम भारत-विभाजन स्वीकार नहीं करेंगे तब मालवीय जी दिल्ली से काशी लौटे।" किसे मालूम था कि दिल्लीवासियों को मालवीय जी के यह अन्तिम दर्शन थे! सन् १९४६ में अन्तरिम सरकार केन्द्र में बनी उसके विरुद्ध मुस्लिम लीग ने भी सीधी कार्यवाही के रूप में जो उपद्रव किये तथा नौआखाली के लोमहर्षक काण्ड से करुणा-मूर्ति मालवीय जी के हृदय को अत्यन्त ठेस पहुँची। उन्होंने अन्तिम समय चेतावनी के रूप में जो वक्तव्य दिया था वह हमारे पास स्थायी निधि है।

★

भारतीय गणराज्य के उपराष्ट्रपति पद पर जिस महान् व्यक्ति को बिठाया गया है वे अपने देश में ही नहीं अपितु एशिया और यूरोप के समृद्ध देशों में अपनी विद्वत्ता के कारण विशेष सम्मान और ख्याति अर्जित कर चुके हैं। इस पद पर विश्व के महान् दार्शनिक डा० राधाकृष्णन अभिषिक्त हैं। स्वयं डा० राधाकृष्णन उपराष्ट्रपति नहीं बनना चाहते थे किंतु देशवासियों के अनुरोध पर उन्हें महान् दायित्वपूर्ण पद दूसरी बार भी स्वीकार करना पड़ा। राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद की तरह उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन भी अपना विशेष व्यक्तित्व रखते हैं। उनकी वेशभूषा और विचार दोनों भारतीय संस्कृति से ओत-प्रोत हैं। विदेशों में उन्हें देखकर कोई भी अनुमान लगा सकता है कि भारतीय संस्कृति और उनकी विचारधारा किस ढंग की है। यह उन्हें देखकर सहज ही में अनुमान लगाया जा सकता है। उपराष्ट्रपति पद पर आसीन होने से पहले भी डा० राधाकृष्णन भारतीय गौरव को विदेशों में सम्मानित कर चुके हैं। भारत के अतिरिक्त और भी देश के विचारकों में उनका बहुत बड़ा स्थान है। उन्होंने जितनी

पुस्तकें अब तक लिखी हैं, उन्हें पढ़कर विदेशों के दार्शनिक भी चकित रह गये हैं और जिस समय वह बोलते हैं उस समय उनकी जिह्वा पर सरस्वती विराजमान रहती है और उनके मुख से निकलने वाला एक-एक शब्द अमृत-कण सा बनता जाता है।

डा० राधाकृष्णन का जन्म १८८८ में ५ सितम्बर को मद्रास से ४० मील दूर तिरूतनी नामक स्थान पर हुआ था। आपके पिता मालगुजारी विभाग से सम्बन्धित एक अधिकारी थे। आरम्भ में आपकी शिक्षा मद्रास में हुई। शिक्षण-काल में आपकी रुचि दर्शनशास्त्र के प्रति विशेष रूप से रही। १९०९ में एम० ए० पास करने के बाद आप मद्रास, मैसूर और कलकत्ता के विश्वविद्यालयों में दर्शन-विभाग के अध्यापक रहे। सन १९२६ और '३० के दौरान में आप अमेरिका और लन्दन आदि गये और वहाँ आपने भारतीय दर्शन तथा पाश्चात्य दर्शन पर गम्भीर भाषण दिये। अमरीका तथा लन्दन के ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालयों में भी आपने कुछ दिन तक दर्शनशास्त्र का अध्यापन किया। कुछ दिनों तक आप आंध्र विश्वविद्यालय के उपकुलपति भी रहे और इसी तरह से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के उपकुलपति रहने का भी आपको सौभाग्य मिला है।

विदेशों में रहकर आपने विशेष ख्याति अर्जित की।

डा० राधाकृष्णन तत्व-ज्ञान में विशेष अधिकार रखते हैं। एक विदेशी विद्वान् ने एक व्याख्यानमाला में उनका भाषण सुनकर यह कहा था कि वे जिस विषय पर बोल रहे

थे उसे सुनकर ऐसा लगता था कि जैसे साक्षात् वह स्वयं ही उस रूप के स्वामी हों।

आपके विचारों का देश-विदेश सभी स्थानों पर सम्मान हुआ है।

स्व० स्टालिन के शब्दों में डा० राधाकृष्णन क हृदय में पीड़ित जनता के लिए करुणा है और वह जब बोलते हैं, तो करुणा-मिश्रित पुकार होती है। इसी से ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री श्री चर्चिल ने एक अवसर पर कहा था कि जिन कारणों से आज संसार बँटा हुआ है उन कारणों को मिटाने में डा० राधाकृष्णन जैसे लोग सफल हो सकते हैं और उन तनाव के कारणों को जितना राधाकृष्णन समझते हैं उतना दूसरे कम ही लोग जानते हैं।

डा० राधाकृष्णन का जीवन जिस तरह का है उसके अनुसार वे भारतीय गणराज्य के एक विशेष प्रशासक होने के बाद भी उन्हें किसी प्रकार का घमण्ड छू तक नहीं गया है और उनके निवास-स्थान पर उनके निकट आने वालों को कभी यह अनुभव भी नहीं होता कि डा० राधाकृष्णन से मिलना असम्भव है अथवा कोई उपराष्ट्रपति होने के कारण जनसम्पर्क के लिए अलग है। जितने लोग उनसे मिलने जाते हैं वे अपने विनम्र व्यवहार से उन्हें वापस नहीं लौटाते।

आपकी एक पुस्तक के सम्बन्ध में एच० जी० वेल्स ने लिखा था कि पुस्तक के पढ़ने वालों को चाहिए कि इन पुस्तकों को पढ़ने के लिए अपनी सारी पुस्तकें बेच दें, क्योंकि इनमें मनुष्य जाति द्वारा प्राप्त ज्ञान का अद्भुत भण्डार भरा है।

इसी तरह 'लन्दन टाइम्स' ने भी आपकी पुस्तक को पाश्चात्य सभ्यता की धारा बदल देने वाली पुस्तक कहा है।

डा० राधाकृष्णन का नियमित जीवन है और वे जीवन में पूर्णतया शाकाहारी हैं तथा किसी प्रकार के व्यसन उन्हें छू तक नहीं गये हैं। यहाँ तक कि वे धूम्रपान भी नहीं करते। प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में उठकर आवश्यक काम-काज से निबटकर आप राज्य सभा में जाते हैं और वहाँ से लौटने पर भोजन करके विश्राम और उसके उपरान्त विभिन्न भेंट करने वालों से मिलकर वार्ता-लाप करते हैं। साढ़े आठ बजे तक भोजन करने के बाद कुछ पढ़कर विश्राम करते हैं। जीवन में क्रिकेट के साथ-साथ पढ़ने-लिखने का ही आपको शौक है।

सन् १९४९ में आपने प्रधान मन्त्री श्री नेहरू के अनुरोध पर सोवियत रूस में राजदूत रहना स्वीकार किया था और अपने सेवा-काल में आपने उन देशों के निवासियों को परामर्श दिया था कि शान्ति ही से किसी भी देश की उन्नति हो सकती है।

आपके भाषण और भाषा में अखण्ड प्रवाह, ओज, विचित्र आकर्षण होता है। अंग्रेजी भाषा के लिखने और बोलने में भी श्री राधाकृष्णन को जो सफलता प्राप्त हुई है उस पर स्वयं उन लोगों को आश्चर्य है जिनकी वह मातृभाषा है। इनका व्याख्यान सुनने वाले एक अंग्रेज विद्वान् ने लिखा है कि :—

जब राधाकृष्णन भाषण करते हैं, हम आकाश से ऊपर उड़ जाते हैं और जब भाषण समाप्त होता है, हम धरती पर आ जाते हैं।

सन् १९५२ में बृटिश साम्राज्य के समस्त विश्वविद्यालयों की कांग्रेस तथा अमरीका के हार्डवुड विश्वविद्यालय की कांग्रेस में आप कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि के रूप में भारत का प्रतिनिधित्व करने गये थे। हार्डवुड की दर्शन परिषद् में 'सभ्यता का भविष्य' शीर्षक विषय पर आपका जो अत्यन्त सार गर्भित और ओजपूर्ण भाषण हुआ उसका पाश्चात्य देश-वासियों पर विशेष प्रभाव पड़ा। फिर मैंचेस्टर कालेज में 'हिन्दू व्यूज़ आफ लाइफ' पर आपकी व्याख्यानमाला प्रारम्भ हुई। आपके भाषण सुनने के लिए घण्टों पहले लोग एकत्रित होते थे और भाषण समाप्त होने तक पूर्ण शान्ति बनी रहती थी। आपकी वाणी में ऐसी अलौकिकता है कि इग्लैण्ड में ईसाई तथा अन्य धर्मों पर हुए आपके व्याख्यान की प्रशंसा करते एक दैनिक पत्र ने लिखा था कि :—

"इस भारतीय उपदेशक और व्याख्याता में भाव, विचार और कल्पना का जादू-भरा जाल बुनने की अद्भुत शक्ति तो है ही, पर इनके भाषणों की महत्ता का प्रमुख कारण उसमें निहित वर्णनातीत आध्यात्मिक शक्ति है।"

एक पाश्चात्य आलोचक ने आपके भाषा-सौन्दर्य पर मुग्ध होकर लिखा है कि भाषा-शैली का सौन्दर्य आपमें अभूत-पूर्व है।

देश का यह सौभाग्य है कि हमें एक ऐसा मार्गदर्शक और महापुरुष उपराष्ट्रपति मिला है।

*

आचार्य नरेन्द्रदेव भारतीय राजनीति में एक उस प्रकार के महापुरुष थे जो जितने राजनीति मे परिपक्व थे उससे कही अधिक शिक्षा और सांस्कृतिक मामलों में भी दक्ष थे। कांग्रेस से अलग हो जाने के बाद भी वे सदैव कांग्रेस के उच्च नेताओं के प्रीति-भाजन रहे। वे एक ऐसे अजातशत्रु महापुरुष थे कि विचार-विभेद होने पर भी देश के सभी वर्गों के श्रद्धा-भाजन थे और लोग उनकी प्रशसा करते थे। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी उनकी अगाध विद्वत्ता के प्रशंसक थे और उन्होने कई बार कहा भी था कि आचार्य नरेन्द्रदेव को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अध्यक्ष बनाया जाय। इसी प्रकार प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू उनका विशेष सम्मान करते थे। जब कभी वे दिल्ली आते थे, उनसे मिलकर प्रसन्नता अनुभव करते। आचार्य जी स्वयं भी दूसरों की हार्दिक भावनाओं का बड़े स्नेह के साथ सम्मान करते थे। गर्व तो उन्हें छू तक भी नहीं गया था। सच्चे अर्थों में वे विनय के अवतार थे और 'हितोपदेश' के उस श्लोक का यह अंश 'विद्या ददाति विनयम्'

सही मानों में उनके प्रकाण्ड पाण्डित्य के साथ नम्रता का स्वभाव इस उक्ति को पूर्ण रूप से चरितार्थ करता था। जिन दिनों भारत से एक शिष्टमण्डल चीन की यात्रा पर जा रहा था उस समय प्रधान मन्त्री श्री नेहरू ने आचार्य जी को उस शिष्टमण्डल में जाने का अनुरोध किया। आचार्य जी ने भी श्री नेहरू के इस अनुरोध को टाला नहीं, और जब कुछ व्यक्तियों ने इस पर आपत्ति उठाई तब उन्होंने कहा कि मैं अपने पुराने साथियों का अनुरोध कैसे टाल सकता हूँ। इस तरह से वे अपने मित्रों का सदैव सम्मान करते थे। यही कारण था कि उनसे कई बार किसी भी विश्वविद्यालय का उपकुलपति बनने का आग्रह किया गया और इस आग्रह के फलस्वरूप वे काशी विश्वविद्यालय और लखनऊ विश्वविद्यालय के उपकुलपति बने। लखनऊ में सदैव उनके सम्मान के प्रति विश्वविद्यालय के छात्र जागरूक रहे।

आचार्य नरेन्द्रदेव का जन्म सन् १८८९ में सीतापुर के एक साधारण वर्ग के खत्री परिवार में हुआ था। बचपन में जब वे दस वर्ष के थे तब वह लोकमान्य तिलक के अनन्य भक्त थे और उन्होंने इस अवस्था में कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लिया। उन दिनों कांग्रेस के अधिवेशनों में जो कार्यवाही होती थी, वह प्रायः अंग्रेजी भाषा में होती थी, इसलिये आचार्य जी उस कार्यवाही को समझ न पाये, परन्तु आनन्द के साथ वाद-विवाद का लाभ उठाते रहे। इस प्रकार आचार्य जी का सम्पर्क राजनीति में बाल्यकाल से ही हो गया था। विद्यार्थी जीवन में म्योर सैन्ट्रल कालेज से शिक्षा प्राप्त करके उन्होंने फैजाबाद

में अपनी वकालत प्रारम्भ की और इस व्यवसाय की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए वे विलायत जाना चाहते थे किन्तु माता-पिता ने उन्हें इतनी दूर भेजना स्वीकार न किया।

आचार्य जी का दुबला-पतला शरीर और साधारण वेष-भूषा को देखकर बहुत बार लोग आश्चर्य में पड़ जाते थे कि इतना प्रतिभाशाली होता हुआ यह व्यक्ति कितना सरल एवं साधारण जीवन बिता रहा है। वकालत करते हुए उन्हें कुछ समय ही बीता था कि वे असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े। देश-सेवा के निमित्त अपना जीवन अर्पित करने के कारण उन्हें अनेक बार जेल जाना पड़ा। १९४२ के 'भारत-छोड़ो आन्दोलन' में भी वे कांग्रेस कार्यकारिणी के साथ नजरबन्द रहे और इस अवधि में आपनें कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे। कैसी विडम्बना है कि आचार्य जी के पिता जी स्वयं एक अच्छे ख्यातिनामा वकील थे और वे चाहते थे कि उनका पुत्र भी वकालत में अपना नाम विख्यात करे, किन्तु वे स्वाधीनता-संग्राम में कूद पड़े और स्वाधीनता की नौका के खेवनहार बने !

आचाय जी फैजाबाद में होम रूल लीग के सेक्रेटरी भी थे और कलकत्ता कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लेने गये, किन्तु जब कांग्रेस का अधिवेशन प्रयाग में हुआ तब वे उसमें सम्मिलित नहीं हुए। इसका प्रमुख कारण यह था कि कांग्रेस पार्टी ने उनकी विचार-धारा के समर्थकों को वहिष्कृत कर दिया था। आचार्य जी को जहाँ गांधी जी कांग्रेस का अध्यक्ष बनाने के लिए प्रयत्नशील थे उसी प्रकार नेता जी सुभाषचन्द्र बसु जब कांग्रेस के अध्यक्ष बने तब उन्होंनें अपनी कार्यकारिणी में रहनें

के लिये आचार्य जी से आग्रह किया। जिन दिनों भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रति असहयोग चल रहा था और राष्ट्रीय शिक्षा के स्कूल खोले जा रहे थे, उन दिनों आपने काशी विद्यापीठ का आचार्यत्व स्वीकार करके राष्ट्रीय शिक्षा का प्रसार किया।

आचार्य जी को कई बार मुझे निकट से देखने का अवसर मिला। उनमें मैंने यह देखा कि वे निष्कपट और शुद्धाचरण के आदर्श व्यक्तित्व वाले महापुरुष हैं। आचार्य जी समाजवाद के सुदृढ़ स्तम्भ भी थे। उनके समान धारा-प्रवाह रूप से वक्तृत्व-कला के पारंगत इने-गिने ही व्यक्ति हो सकते हैं। वे जब भाषण करते थे तब ऐसा लगता था जैसे सरस्वती का उन्हें अक्षय शब्द-कोष मिल गया हो जिसका उपयोग बड़े प्रेम के साथ वे कर रहे हों। उर्दू और अंग्रेजी भाषाओं में भी उनका भाषण उसी प्रवाह के साथ होता था।

आचार्य जी जब तक कांग्रेस में रहे तब भी वे समाजवाद के पक्के समर्थक थे और जब वे अपने दल के साथ कांग्रेस से बाहर आ गये तब भी वे समाजवाद के सच्चे समर्थक बन कर देश में समाजवाद के स्थापित करने के लिये प्रयत्नशील रहे। आचार्य जी जिन दिनों कांग्रेस से अलग हुए तब उन्हें उत्तर प्रदेश कांग्रेस की ओर से अपने निर्णय पर पुनर्विचार करने का अनुरोध किया गया तब आचार्य जी ने कहा था कि हमसे कहा जा रहा है कि हमारे इरादों में गड़बड़ है और कुछ विशिष्ट पदाधिकारी हमें नष्ट-भ्रष्ट करने की धमकी भी देते हैं किन्तु कांग्रेस के सबसे बड़े लोग हमारे इरादों को

भली प्रकार जानते हैं कि हमने कांग्रेस को क्यों छोड़ा है। आपने कांग्रेस में वापस आने के लिए अनुरोध करने वालों का स्वागत करते हुए कहा था कि आपका जो हम पर प्रेम है उसका प्रभाव यह होना चाहिये कि हम सीधे रास्ते पर चलें जो हमने अपने लिये चुना है।

आचार्य जी किसानों के भी नेता थे। पहले ये श्री गोविंद-वल्लभ पन्त के दल के समर्थक थे किन्तु समाजवादी दल के पटना अधिवेशन से सच्चे अर्थों में वे समाजवाद के आंदोलन में जुट गये। आपने किसानों के लिये भी सारे देश में विशेषत: उत्तर-प्रदेश में बड़ा कार्य किया। किसान सभा और समाज-वादी संस्था के कई बार सभापति बनाये गये और भी कई विशेष अवसरों पर इनकी सेवाओं का उपयोग किया जाता रहा। १९३९ में जब पहली बार कांग्रेस ने मन्त्रिमंडल बनाया तो आपसे उत्तर प्रदेश के मन्त्रिमंडल में रहने का अनुरोध किया गया था, किन्तु आचार्य जी ने उसे स्वीकार नहीं किया था। इसके विपरीत शिक्षा आदि विषयों पर सरकार ने जो कमेटियाँ नियुक्त कीं उनमें उन्होंने हृदय से काम किया।

आचार्य जी इन विशेषताओं के अतिरिक्त कुशल लेखक भी थे और आपने कई पुस्तकें लिखी हैं। पिछले दो वर्ष पूर्व वे दमे के रोग से पीड़ित थे और उसके उपचार के लिये बम्बई के राज्यपाल श्री श्रीप्रकाशजी के परामर्श के अनुसार बम्बई के निकट वहीं विश्राम कर रहे थे कि दमे के प्रकोप के कारण उनका निधन हो गया और हम एक ऐसी महान्-विभूति की सेवाओं से वंचित रह गये जिसकी देश को बड़ी आवश्यकता थी।

★

बलि-पथ के राही

★ अमर सेनानी तांत्या टोपे

★ नेताजी सुभाष

★ अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद

★ वीर भगतसिंह

भारतीय स्वाधीनता संग्राम की १८५७ में लड़ी गई लड़ाई के वीर ताँत्या टोपे का बलिदान हुए निन्यानवे वर्ष बीत गये। इन वर्षों में भी उनकी वीरता तथा अद्भुत पराक्रम की कहानी देश के विभिन्न भागों में फैली हुई है। वीरवर ताँत्या टोपे की कुछ वस्तुएँ राष्ट्रपति-भवन में देखने का अवसर मुझे मिला है। उनकी उन वस्तुओं में उनका वह बयान भी रखा हुआ है जिसमें उन्होंने अपने को अपराधी न मानकर अपने वीरतापूर्ण कार्य को देशभक्ति का रूप माना था। यह बयान उर्दू में है और उस पर वीरवर ताँत्या टोपे के मराठी में हस्ताक्षर हैं।

ताँत्या के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि उन्होंने १८५७ की क्रांति की अग्नि प्रज्ज्वलित करने में कलकत्ता से लेकर मेरठ तक अभूतपूर्व काम किया था। मेरठ और दिल्ली में क्रांति हो जाने पर कानपुर को क्रांति का केन्द्र बना देने वाले वीर पुरुष ताँत्या ही थे।

ताँत्या टोपे एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण-परिवार में १८१४

में पैदा हुए थे। आपके पिता पांडुरंग भट्ट थे, जिनके आठ पुत्र थे। सम्भवत: इन आठ पुत्रों में श्री टोपे ही सबसे बड़े थे। जब पेशवा बाजीराव को पेन्शन देकर कानपुर के पास बिठूर में रहने को भेजा गया तब आपका परिवार भी बिठूर आ गया। तांत्या यहाँ पहले बाजीराव की सेवा में रहे, बाद में वे नाना साहब के प्रमुख सहयोगी बन गये और नाना साहब की क्रांति-परक चिन्तिन-धारा को आगे बढ़ाने में आपका पूर्ण सहयोग रहा।

तांत्या टोपे १६ जुलाई १८५७ में कानपुर में नाना साहब के साथ रहकर विरोधियों से लड़े और कानपुर से बिठूर चले गये। बिठूर में तांत्या की छिन्न-भिन्न सेना को संगठित करने का अधिकार दिया गया। इस कार्य में तांत्या कुशल थे। कई बार पहले भी इस सम्बन्ध में अपना कौशल प्रदर्शित कर चुके थे। तांत्या द्वारा संगठित की गई सेना का पराक्रम १६ अगस्त १८५७ को देखने का अवसर मिला जब इस सेना का हैवलाक की सेना से डट कर मुकाबला हुआ। तांत्या की सेना के रण-कौशल की प्रशंसा करते हुए हैवलाक ने सैन्य-अधिकारियों को जो पत्र भेजा था उसमें लिखा कि इस सेना ने बड़ी दृढ़ता से काम किया है।

हैवलाक की मुठभेड़ से क्षत-विक्षत सेना को संगठित करने के लिये तांत्या टोपे नाना साहब से परामर्श करके ग्वालियर में आ गय। ग्वालियर के शिन्दे की जिस शर्त पर सहायता मिली वह चिरस्थायी नहीं रही और १५ अक्टूबर १८५७ को तांत्या वहाँ से चले गये। यहाँ से चल कर तांत्या ने जालौन,

कछ्वागढ़ आदि होकर कालपी को अपना प्रमुख केन्द्र बनाया और स्थिति अनुकूल देखकर कालपी का शासन नाना साहब के भानजे राव साहब को सौंप दिया। ताँत्या टोपे ने १० नवम्बर १८५७ को कालपी छोड़कर नवम्बर के अन्त में शिवली और शिवराजपुर भी जीता।

ताँत्या का अंग्रेज सेना के साथ कानपुर में २६ नवम्बर को युद्ध हुआ और अंग्रेजी सेना परास्त कर दी और २७ नवम्बर का युद्ध एवं २८ नवम्बर १८५७ का युद्ध ताँत्या के पक्ष में रहा। इस प्रकार से कानपुर ताँत्या का हो गया। इस प्रकार ताँत्या ने दो बार कानपुर पर अधिकार किया।

कानपुर से कालपी आने तक ताँत्या टोपे के साहस में कोई कमी नहीं हुई। २०-२५ हजार तक सेना उनकी कमान में थी, किन्तु जब झाँसी और कालपी में सर ह्यूरोज के मुकाबले में उनकी पराजय हुई तब उनकी शक्ति में कमी आ गई, फिर भी उन्होंने पराजय स्वीकार नहीं की। वे कालपी से ग्वालियर आ गये और यहाँ उन्होंने अपनी शक्ति बहुत बढ़ा ली। अक्टूबर १८५७ में ग्वालियर कांटिनेंट की सुदृढ़ सेना को अपने साथ कानपुर ले जाना और फिर जून १८५८ में ग्वालियर की समस्त सेना को अपनी ओर मिलाकर सहज ही में ग्वालियर पर अधिकार कर लेना ताँत्या टोपे की ही कार्यकुशलता का परिणाम था। किन्तु दुर्भाग्य से ग्वालियर में भी उनकी योजनाओं को सफलता न मिली। वास्तव में जब सितम्बर १८५७ में भीषण संघर्ष के बाद दिल्ली पर अंग्रेजी सेनाओं का अधिकार हो गया और बहादुरशाह कैद कर लिये गये, तब जुलाई तथा

अगस्त में कानपुर तथा बिठूर में नाना साहब पेशवा और ताँत्या टोपे की हार हो गई और कानपुर में दिसम्बर में पुनः ताँत्या टोपे को पराजय मिली और लखनऊ का घेरा भी विफल हो गया, फिर जब अप्रैल १८५८ में रानी लक्ष्मीबाई को झाँसी छोड़कर कालपी जाना पड़ा और अन्त में जब जून १८५८ में ग्वालियर में ताँत्या टोपे तथा रानी लक्ष्मीबाई की सेनाओं की पराजय हुई और रानी स्वर्ग सिधार गईं तभी यह निश्चित हो गया कि देश का स्वातंत्र्य-युद्ध समाप्त हो गया। अंग्रेजों का शासन उखड़ते-उखड़ते बच गया।

फिर भी ताँत्या टोपे ने साहस न छोड़ा और दक्षिण पहुँच कर एक बार पुनः भारतीय झण्डा वहाँ खड़ा करने की योजना पर दृढ़ रहे। अल्प साधनों के होते हुए भी उन्होंने अपनी कल्पनाओं को मूर्त रूप देने का उद्योग जारी रखा। वे विशाल अंग्रेजी शक्ति से टक्कर लेते रहे और इस प्रकार संघर्ष को और भी ८–१० मास तक जीवित रखा और जब तक कि उनकी शक्ति बिलकुल ही क्षीण न हो गई और संघर्ष की संभावनाएँ सर्वथा नष्ट न हो गईं। देश में कम्पनी-राज्य समाप्त होकर रानी विक्टोरिया का शासन स्थापित हो गया। रानी की ओर से विद्रोहियों को व्यापक क्षमा-दान की घोषणा कर दी गई, उनके कुछेक साथी उनका साथ छोड़कर चले गए और अंग्रेजों के सामने हाजिर हो गए, किन्तु फिर भी ताँत्या टोपे ने अंग्रेजों के सामने आत्म-समर्पण करने का कभी विचार तक नहीं किया।

ग्वालियर में पराजय के पश्चात् ताँत्या टोपे ने परिस्थितियों

के अनुसार एक नई रण-नीति अपनाई। यह नीति थी—जहाँ तक सम्भव हो सके अंग्रेजी सेनाओं के साथ प्रत्यक्ष संघर्ष से बचना, अपने पास शक्ति-संग्रह करना तथा अपना लक्ष्य दक्षिण की ओर बढ़ाना। इस नीति के अनुसरण में उन्हें कभी-कभी दिन और रात चलना पड़ा, बड़ी-बड़ी नदियाँ चम्बल, बेतवा, नर्मदा आदि को कई बार वर्षा-ऋतु की बाढ़ों के समय भी सेना सहित पार करना पड़ा, ऊँची पहाड़ियों और घाटियों को लाँघना पड़ा, किन्तु उन्होंने ये समस्त कार्य इतनी कुशलता के साथ किये कि अंग्रेज सेनापतियों को आश्चर्य-चकित रह जाना पड़ा। अंग्रेजी सेनाएँ जब तक उनकी हलचलों का पता लगाकर उनके पास पहुँचतीं तब तक वे आगे बढ़ जाते। कोई नदी सामने आ जाने पर वे उसे अपनी सेनाओं सहित पार कर जाते और अंग्रेजी सेनाएँ दूसरे किनारे पर देखती ही रह जातीं। इस प्रकार उन्होंने अंग्रेजी सेनाओं को परेशान कर दिया और जब सामने आ जाने पर मुकाबला करना अनिवार्य हो गया तब उन्होंने मुकाबला किया और पराजित हो जाने पर भी आगे बढ़ जाने का प्रयत्न किया। अंग्रेजी सेनाएँ चारों ओर से उन्हें घेरने का प्रयत्न करती रहीं। कई बार तो छः से बारह तक अंग्रेज सेनापति अपनी विशालतम सैन्य-सामग्री के साथ उन्हें घेरने का प्रयत्न करते रहे, किन्तु वे उन्हें चकमा देकर आगे बढ़ते रहे। ऐसी परिस्थितियों में नर्मदा पार करके एक बार नागपुर के समीप तक पहुँच जाना और बम्बई, हैदराबाद तथा मद्रास तक में घबराहट उत्पन्न कर देना उनकी दृढ़ता तथा कार्य-कुशलता का एक ज्वलन्त उदाहरण है। इसी

कार्य-कुशलता के कारण उन्हें एक महान् गुरिल्ला सेनानी माना गया है।

वास्तव में पूर्णतया सेना-रहित तथा शक्तिहीन हो जाने पर भी उनका अंग्रेजों के हाथ में पड़ना अत्यन्त कठिन था, यदि उनके ही एक साथी ने विश्वास-घात करके उन्हें अंग्रेजों के हाथ गिरफ़्तार न करा दिया होता और जब ऐसी परिस्थिति आ गई तब उन्होंने साहस के साथ मृत्यु का आलिंगन किया।

इस संघर्षपूर्ण जीवन में एक विश्वासघातक मित्र ने उन्हें ७ अप्रैल १८५९ को गिरफ़्तार करा दिया और उन पर अभियोग लगाकर प्राणदण्ड दे दिया गया। प्राण-दण्ड के सम्बन्ध में इतिहासकारों के अलग-अलग मत हैं। जो इतिहास-कार यह मानते हैं कि ताँत्या टोपे को प्राण-दण्ड दिया गया उनके अनुसार ताँत्या को १८ अप्रैल के दिन फाँसी की सजा दी गई।

ताँत्या में क्या गुण थे, यह उनके शत्रु अंग्रेजों के विचारों से भली प्रकार जाना जा सकता है। अंग्रेजी इतिहास-लेखक कर्नल मालेसन ने लिखा है: "और यह बात सत्य भी है कि भारत ने जो महान् देशभक्त नेता पैदा किये उनमें ताँत्या टोपे का प्रमुख स्थान है। १८५७ के क्रान्तिकारियों को यदि ऐसे दो-तीन सेनापति और मिल जाते तो अंग्रेजी सेनाओं को भारत पर पुनः अधिकार जमाना बड़ा कठिन हो जाता।" लन्दन के सुप्रसिद्ध पत्र "टाइम्स" में ताँत्या के बारे में प्रकाशित हुआ था कि: "हमारा विचित्र मित्र ताँत्या टोपे इतना

चतुर और कठोर है कि उसकी प्रशंसा करना कठिन है। वह हमारे लिये बड़ा कष्टदायक हो गया है।"

ताँत्या टोपे के रण-कौशल की प्रशंसा करते हुए आगे लिखा है—"जब हम उसे खोजना चाहते थे तब वह हमसे इतना दूर हो जाता था कि मिलना कठिन था। पर्वतों की ऊँचाई, नदी-नालों का बहना, दर्रे-घाटी और दलदल कोई भी उसकी गति में बाधा नहीं डाल सकते। वह हवा की तरह घूमता है परन्तु हाथ नहीं आता। वह आज हमारी सेनाओं के बीच में है, कल पीछे और परसों आगे। सर्वोत्तम मैशीनरी भी इतनी तेजी से न चल सकेगी।"

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का जन्म सरकारी वकील श्री जानकीनाथ बोस के घर में २३ जनवरी सन् १८९७ को हुआ था।

सुभाष का बचपन लाड़-प्यार में बीता। उनका स्वभाव ज़िद्दी और उग्र था और बुद्धि तीव्र। कटक के नेशनल कालेज से मैट्रिक्यूलेशन परीक्षा पास करके आप कलकत्ता जाकर प्रेसीडैन्सी कालेज में भरती हो गये। उपर्युक्त कालेज में अंग्रेज विद्यार्थियों की संख्या अधिक रहती थी और वे भारतीय विद्यार्थियों को घृणा की दृष्टि से देखते थे। श्री बोस अंग्रेज विद्यार्थियों का व्यंग सुन कर प्रायः उनसे भिड़ जाया करते थे। एक बार एक अंग्रेज लड़के के यह कहने पर कि बंगाली लड़का बड़ा बोदा होता है, आपने उसे कालिज के मैदान में दे मारा। एक बार अपने एक बन्धु के प्रति कालेज के एक प्रोफेसर द्वारा लगाये गए आरोप को सुनकर आपसे प्रोफेसर पर भी लाल-पीले हुए बिना न रहा गया। इस अपराध के कारण वे कालेज से निकाल दिये गये।

सन् १६२० का समय था। देश स्वतन्त्रता का आह्वान करने की तैयारी कर रहा था। सिविल सर्विस परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए लन्दन में बैठा हुआ प्रखर प्रतिभा-सम्पन्न सुभाष सन् १६१४ के महासमर में अपार धन-जन की क्षति उठाकर ब्रिटेन की सहायता करने वाले भारत को पुरस्कार-स्वरूप "रौलट ऐक्ट" पाता हुआ देखकर तिलमिला उठा। प्राप्त सफलता को त्याग कर जन्म-जात देश-प्रेम को सिद्ध करते हुए लन्दन की स्वतन्त्र भूमि में देश को आजाद करने की दृढ़ प्रतिज्ञा में आबद्ध होकर भारत लौटा। महात्मा गान्धी द्वारा रौलट ऐक्ट के विरोध में आरम्भ किये गए असहयोग-आन्दोलन से औचित्य को सुधारवादी बंगाल की स्वराज्य-पार्टी ने स्वीकार कर लिया था, अतः आन्दोलन में बंगाल कांग्रेस के साथ हो गया। स्वराज्य पार्टी के नेता श्री देशबन्धु के साथ श्री सुभाष ने सर्वप्रथम राजनीति के युद्ध-क्षेत्र में पदार्पण किया। १६२० के अन्त और १६२१ के प्रारम्भ में ही देश-बन्धु अपना सारा कार्य-भार श्री बोस के कन्धों पर छोड़कर सरकार के मेहमान बन गये। इसके बाद श्री बोस की सक्रियता तीव्रतर होने लगी। श्री दास की गिरफ़्तारी के बाद स्व-राज्य-पार्टी के एक-मात्र पत्र 'फारवर्ड' की व्यवस्था श्री बोस ने अपने हाथों में ले ली।

चौराचोरी-काण्ड के कारण १६२१ का आन्दोलन बन्द हो गया। देश निष्क्रिय हो रहा था। स्वतन्त्रता की आवाज कौंसिलों तक सीमित हो गई थी। उसी समय श्री सुभाष को कलकत्ता कार्पोरेशन के चीफ़ एक्जीक्यूटिव अफसर होने का

गौरव प्राप्त हुआ। इस पद पर पहुँच कर श्री बोस ने अपनी लगन, जन-हित चिन्ता तथा अनवरत परिश्रम के कारण पर्याप्त ख्याति प्राप्त की, किन्तु वे अधिक दिनों तक जनता की सेवा नहीं कर सके और सन् १९२४ में गिरफ्तार करके माण्डले भेज दिये गये। इस गिरफ़्तारी का कारण बंगाल आर्डिनेंस का विरोध था।

श्री बोस अस्वस्थता के कारण दो साल के कारावास के बाद छोड़ दिये गये। श्री बोस माण्डले से छूटकर जब आये तब उनके राजनीति के गुरु श्री देशबन्धु दास का स्वर्गवास हो चुका था। १६ जून १९२५ को श्री बोस को उनके निधन का का अपार दुःख हुआ और यही दुःख ब्रिटिश शासन के प्रति तीव्र घृणा का कारण हो गया। अस्वस्थ होते हुए भी श्री बोस ने प्रान्त-भर का दौरा करके स्वयंसेवकों का संगठन प्रारम्भ कर दिया।

कुछ साल बाद श्री तेज बहादुर सप्रू की अध्यक्षता में एक कमेटी संगठित की गई जिसने औपनिवेशिक पद के आधार पर एक विधान ब्रिटिश कौंसिल के सम्मुख प्रस्तुत किया। श्री बोस कमेटी के सदस्य थे और उन्होंने भी विधान-पत्र पर अपना हस्ताक्षर किया था परन्तु कुछ दिनों बाद आप उस कमेटी से अलग हट गये और पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। इतना होने पर भी आप कांग्रेस के साथ बराबर काम करते रहे। स्वर्गीय श्री मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में हुए सन् १९२८ के कांग्रेस-अधिवेशन के समय बृटिश सरकार को औपनिवेशिक पद स्वीकार करने के लिए

एक और अवसर दिया गया। यद्यपि आप इस समझौतावादी नीति से संतुष्ट न थे तथापि आपने उस समय कुछ नहीं कहा। अन्त में कांग्रेस ने पं० जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में हुए लाहौर अधिवेशन में दिसम्बर १६२६ से पूर्ण स्वाधीनता का ध्येय निश्चित किया।

सन् १६३० में श्री सुभाषचन्द्र बोस कलकत्ता कारपोरेशन के मेयर चुने गए। उसी समय पूज्य महात्मा गान्धी के नेतृत्व में सविनय-अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। बंगाल में आप गिरफ़्तार कर लिये गये और उन्हें नौ मास का कारावास-दण्ड मिला।

२६ जनवरी सन् १६३१ को सारे देश में स्वतन्त्रता दिवस मनाया। कलकत्ता में आपके नेतृत्व में जुलूस निकला। कलकत्ता के कलक्टर ने स्वतन्त्रता-दिवस में भाग न लेने के लिए आप पर नोटिस निकाला, किन्तु आप कब मानने वाले थे। फल-स्वरूप आपको पुलिस की लाठियों का उग्र प्रहार सहना पड़ा। १८ जनवरी को दफा १४४ तोड़ने के अपराध में आप कई दिनों का कारावास भुगत चुके थे।

११ नवम्बर १६३१ को सारे ढाका में पुलिस के अत्याचारों की जाँच करने वाली गैर-सरकारी कमेटी में भाग लेने के लिये जाते समय आप ढाका से चार मील के फासले पर स्थित तेजगाँव नामक स्टेशन पर पुलिस द्वारा पुनः गिरफ्तार कर लिये गये। सब डिवीज़नल आफीसर ने उनको लौट जाने को कहा, पर वे न माने। फलतः वे ढाका सेन्ट्रल जेल भेज दिये गये। जेल जाते समय आपने जनता को संदेश दिया था-

"चटगाँव" और "हिजली" को याद रखो। हम इन घटनाओं का पूरा प्रतिकार और क्षति-पूर्ति हुए बिना शान्त नहीं रह सकते है।

जेल से छूटने के बाद सन् १९३४ में आप स्वास्थ्य सुधारने के लिये जर्मनी चले गये।

सन् १९३५ के शासन-विधान के कारण भारतीय राजनीति के क्षेत्र का रंग बदल चुका था। भारत के सात प्रान्तों में कांग्रेस-मन्त्रिमण्डल कार्य कर रहे थे। हरिपुरा में कांग्रेस का ५१वाँ अधिवेशन १९३८ में होने जा रहा था। राष्ट्रपति का चुनाव था। श्री बोस उस समय तक अपने अपूर्व त्याग और साहस के कारण जनता के प्राण बन चुके थे। फलस्वरूप वे हरिपुरा कांग्रेस के राष्ट्रपति चुने गए।

इसके बाद सन् १९३९ में जब कि कांग्रेस का ५२वाँ अधिवेशन त्रिपुरी में होने जा रहा था, श्री बोस पुन: राष्ट्रपति के पद के लिए उम्मीदवार खड़े हुए। कांग्रेस के वाम पक्ष और दक्षिण पक्ष में मतभेद काफी बढ़ चुका था। श्री बोस द्वितीय महासमर को उपस्थित देख कर तथा ब्रिटेन का फँसना देखकर सरकार पर एकदम हावी हो जाना चाहते थे और चाहते थे समय से राजनीति का लाभ उठाना। दक्षिण पक्ष इसके विरोध में था। फलस्वरूप श्री बोस के विरोध में श्री पट्टाभि सीतारमैया राष्ट्रपति पद के लिए खड़े किये गए। जनता ने इस चुनाव में श्री पट्टाभि के मुकाबले श्री बोस को, इस बात के बावजूद भी कि श्री पट्टाभि को महात्मा गांधी का समर्थन प्राप्त था, अपना राष्ट्रपति चुन लिया। २९ जनवरी १९३९ को

दो माह बाद त्रिपुरी कांग्रेस के खुले अधिवेशन में गांधीवादियों ने गान्धी जी की नीति पर दृढ़ रहने की माँग पेश की। सुभाष ने केवल अपने व्यक्तित्व के बल पर उसका विरोध किया, किन्तु व्यर्थ। १२ मार्च को श्री गोविन्दवल्लभ पन्त का गान्धी जी की नीति में दृढ़ विश्वास-सम्बन्धी प्रस्ताव काँग्रेस के खुले अधिवेशन में पर्याप्त बहुमत से पास हो गया।

२२ फरवरी को सुभाष की नीति से असंतुष्ट होकर कार्य-समिति के १३ सदस्यों ने त्याग-पत्र दे दिया। सुभाष बाबू कोशिश करने पर भी कार्य-समिति न बना सके। फलस्वरूप दो माह तक लगातार गान्धी जी के साथ पत्र-व्यवहार करने के बाद २९ अप्रैल सन् १९३९ को त्याग-पत्र दे दिया।

त्याग-पत्र देने के सम्भवत: दो-चार दिन बाद ही श्री बोस ने "फारवर्ड ब्लाक" नामक संस्था की स्थापना की और अपने संगठन के लिए देशव्यापी दौरा किया। इस संस्था ने बंगाल में पहले-पहल "हालवेल स्मारक" के विरोध में सत्याग्रह-आन्दोलन किया था।

सितम्बर सन् १९३९ में युद्ध शुरू होने के बाद कांग्रेस ने देश की स्वतन्त्रता का प्रश्न ब्रिटिश सरकार के सम्मुख रखा। फल कुछ भी न हुआ। फलस्वरूप महात्मा गान्धी के नेतृत्व में व्यक्तिगत सत्याग्रह-आन्दोलन आरम्भ हुआ। फारवर्ड-ब्लाक गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया और उसके बहुत से सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये। श्री बोस भी दो जुलाई को गिरफ्तार कर लिये गये किन्तु बाद में अनशन के कारण अधिक अस्वस्थ हो जाने के कारण

६ दिसम्बर १९४० को प्रेसीडेन्सी जेलसे छोड़ दिये गये किन्तु शर्त यह थी कि घर पर ही नजरबन्द रहें।

सरकार उनके ऊपर मुकदमा चलाने वाली थी, किन्तु इसी बीच में २६ जनवरी सन् १९४१ को सारे भारतवर्ष को आश्चर्य में डालते हुए वे भारत से बाहर चले गये। कोने-कोने में बड़ी खोज की गई। अन्त में १० नवम्बर १९४१ को गृहमन्त्री श्री कौरनन स्मिथ ने जापान अथवा जर्मन में उनके रहने की साधिकार रूप से घोषणा कर दी।

उसके बाद उन पर तरह-तरह के दोष लगाये गये, उनके आचरण और नीयत के विरुद्ध प्रचार किया गया किन्तु सरकार सफल न हो सकी। कारण देश के दो सर्वश्रेष्ठनेताओं महात्मा गान्धी तथा श्री जवाहरलाल नेहरू ने एक बार फिर श्री बोस को – पथभ्रान्त कहकर – देश सेवक और भारत स्वतन्त्रता का सर्वश्रेष्ठ पुजारी कहकर सारे आशय व्यर्थ कर दिये। सन् १९४५ के लगभग की घटना है कि श्री बोस का घर नीलाम पर चढ़ाकर ब्रिटिश सरकार नीलाम नहीं कर सकी थी, कारण कोई लेने वाला ही नजर नहीं आया।

देश से बाहर जाकर उन्होंने अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए कहाँ क्या किया, कैसे जर्मनी और वहाँ से जापान पहुँचे तथा कैसे आजाद हिन्द सरकार की स्थापना की और कैसे उनके आह्वान पर लाखों नौजवान मरने के लिए तैयार हो गये, यह विचित्र बात है। कैसे बात-की-बात में लाखों की वर्षा होती थी, यह उनके साहस, त्याग, तपस्या और कर्मण्यता की खून से

लिखी अद्भुत कहानी है, जिसे सुन कर आज सहज ही हम उनके व्यक्तित्व का अनुमान लगा सकते हैं।

८ अगस्त १९४५ को जापान का पतन हो गया। १८ अगस्त को लाचार होकर नेता जी को भी आजाद हिन्द सरकार के आत्म-समर्पण का प्रबन्ध करने बैंकाक से टोकियो के लिए रवाना होना पड़ा। विभिन्न सूत्रों से प्राप्त समाचारों का सार है कि उसी दिन फारमोसा द्वीप में उनका वायुयान जमीन से टकरा गया और वे घायल होकर स्वर्गवासी हो गये। २३ अगस्त को टोकियो से इसकी घोषणा अधिकृत रूप से की गई। श्री बोस के सहकारी श्री शाहनवाज़, सहगल और हबीबुर्रहमान का भी कहना है कि सचमुच नेताजी चल वसे हैं। जाँच के बाद भी यही प्रमाणित हुआ है।

कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि भारत ने सुभाष के रूप में अपना एक श्रेष्ठ और निर्भीक सेनापति खो दिया है। राष्ट्रीय भारत २३ अगस्त को कभी नहीं भूल सकता।

किन्तु इसके सम्बन्ध में उनके जीवन और निधन का विषय सन्देहास्पद बना हुआ है। हमारी दृष्टि में इन दोनों बातों को छोड़कर यही कहा जा सकता है कि नेताजी अमर हैं और उनके नाम से सदियों तक भारत प्रेरणा पाता रहेगा

भारत को स्वाधीन कराने के प्रयत्नों में जिन-जिन महा-पुरुषों ने योगदान दिया और इस कार्य के लिये अपने को न्योछावर कर दिया उनमें श्री चन्द्रशेखर आजाद का नाम श्रद्धा से लिया जायगा। श्री आजाद भारतीय क्रान्तिकारी युग के एक तपे हुए सेनानी तथा दल के नेता थे और शक्ति द्वारा विदेशी सत्ता को भारत से निकालने का अहर्निश संघर्ष करते रहे।

श्री चन्द्रशेखर आजाद का जन्म काशी के एक निर्धन ब्राह्मण-परिवार में सन् १९०६ में हुआ था। इनके पिता संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे और वे उन्हें भी संस्कृत का विद्वान् बनाने की इच्छा रखते थे। संस्कृत पढ़ने के लिये पिता ने इन्हें एक संस्कृत पाठशाला में प्रविष्ट करा दिया, किन्तु चन्द्रशेखर के भाग्य में भारतीय स्वातंत्र्य सेनानी के रूप में विख्यात होना लिखा था; फिर वह संस्कृत के विद्वान् कैसे हो सकते थे। घर से संस्कृत पढ़ने के लिये आने वाले श्री चन्द्रशेखर जी पाठशाला से अनुपस्थित रहते और व्यायाम द्वारा शरीर को सुडौल बनाने में ही दिन बिताया करते थे। इसके साथ ही वह कई

बार गंगा के किनारे होने वाले कथा-वार्ता में भी भाग लेते और महापुरुषों के जीवन-चरित्र को सुनकर वैसा ही बनने की इच्छा पैदा करते। इन्हीं दिनों राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का असहयोग आन्दोलन छिड़ गया। इस आन्दोलन के कारण सारे देश में सरकारी स्कूलों, व कालेजों का बहिष्कार होने लगा। श्री चन्द्रशेखर जी पर भी इस आन्दोलन का प्रभाव पड़ा और वे लिखना-पढ़ना छोड़कर आन्दोलन में कूद पड़े और सक्रिय रूप से काम करने लगे। श्री चन्द्रशेखर की आयु १४ वर्ष की थी जब उन्हें असहयोग-आन्दोलन में भाग लेने के कारण भयंकर यातनाएँ सहनी पड़ीं। मजिस्ट्रेट द्वारा नाम-पता पूछने पर जब आपने अपना नाम आजाद, पिता का नाम महात्मा गांधी और घर भारत-भूमि बताया तो उसके क्रोध की सीमा न रही और उसने आयु आदि का तनिक भी विचार न करते हुए इन्हें बेंत लगाने का दण्ड दिया। श्री चन्द्रशेखर के शरीर पर बेंत लगाये गये और वह प्रति बेंत लगने पर 'वन्देमातरम्' और 'भारत माता की जय' का नाद लगाते रहे। इस घटना के उपरान्त ही वह आजाद के नाम से विख्यात हुए।

श्री चन्द्रशेखर आजाद ने इस घटना के उपरान्त दृढ़ निश्चय किया कि ऐसी निर्दय सरकार को सशस्त्र क्रान्ति द्वारा भारत से निकालना चाहिये और वे तभी से प्रतिक्रियावादी बन गये। उस समय जहाँ महात्मा गांधी का असहयोग आन्दोलन सारे देश में चल रहा था वहाँ क्रान्तिकारियों का भी बोलबाला था और बंगाल, उत्तर प्रदेश तथा पंजाब उस समय क्रान्तिकारियों का गढ़ माना जाता था। श्री चन्द्रशेखर आजाद

भी इसी क्रान्तिकारी दल में जो हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसियेशन के नाम से पुकारी जाती थी, सदस्य बने और शीघ्र ही अपनी कार्यकुशलता एवं कर्मठता के कारण दल में विख्यात हो गये। उन्होंने दल के अनुशासन का पालन करते हुए साहस से काम किया और उत्तर प्रदेश के संगठन को इतना सबल बनाया कि दल में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ गई और दल के तत्कालीन नेता उनके ऊपर विश्वास करने लगे।

श्री चन्द्रशेखर का चरित्र दहकते हुए अंगारे के समान ज्योतिमय और ज्योत्स्ना के समान उज्ज्वल था। वे स्त्री जाति का बड़ा सम्मान करते थे। वे अपने साथियों के लिये कठिन-से-कठिन विपत्ति उठाने के लिये सदैव तैयार रहते थे और इसमें तनिक भी संकोच नहीं करते थे। उनका रहन-सहन बिल्कुल सादा था, भोजन बिल्कुल सादा और रूखा-सूखा पसन्द करते थे। कई बार सोते-सोते साथियों को जगा कर दल के संगठन और योजनाओं पर विचार करने लगना उनकी आदत बन गई थी। श्री आजाद दल के सदस्यों से कहा करते थे कि जब तक देश को स्वाधीन न कर लें तब तक आराम नहीं करना चाहिये।

सन् १९२५ में काकोरी की प्रसिद्ध डकैती क्रान्तिकारियों की ओर से की गई थी, जिसका प्रयोजन धन की प्राप्ति करना था। दल के पास धन का अभाव था और इस कमी की पूर्ति के लिये ट्रेन को रोककर सरकारी खजाना लूटने की योजना बनायी गई थी। श्री आजाद इस योजना के विरुद्ध थे, उनका कहना था कि इससे यात्रियों को हानि उठानी पड़ेगी, जो दल

के लिए हानिकारिक सिद्ध हो सकती है, किन्तु अनुशासन के कारण उन्हें भी इसमें भाग लेना पड़ा और उनके ही आग्रह से किसी यात्री को किंचित्‌मात्र भी हानि न उठानी पड़ी। किन्तु इस घटना के बाद देश-भर में क्रान्तिकारियों की खोज प्रारम्भ हो गई और पुलिस विभाग खूब सतर्क हो गया। श्री आजाद उन दिनों काशी में रहकर दल का काम करते थे। पुलिस उनकी तलाश में थी, किन्तु वे पुलिस की आँखों में धूल झोंकते हुए उत्तर भारत में क्रान्तिकारियों का संगठन करते रहे। अपने जीवन में उन्होंने सैकड़ों बार पुलिस को धोखा दिया। उत्तर प्रदेश की पुलिस उनके नाम से काँपती थी। श्री आजाद की बुद्धि इतनी तीव्र थी कि उनसे पुलिस के गुप्तचर भी भय खाते थे। एक बार की घटना है कि श्री चन्द्रशेखर आजाद अपने कुछ साथियों के साथ कानपुर स्टेशन पर उतरे। वहाँ एक पुलिस का गुप्तचर उपस्थित था। उसने उन्हें देख लिया, किन्तु आजाद घबराये नहीं, वे सीधे गुप्तचर के पास पहुँचे और उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहा—देखो, फिजूल की बातें न करो। तुम अपना काम करो और मैं अपना काम करता हूँ। बेचारा पुलिस का वह गुप्तचर पत्थर की मूर्ति की तरह देखता ही रह गया और वह साइकिल पर सवार होकर चलते बने। इसी प्रकार प्रयाग की भी एक घटना है जब उन्होंने पुलिस को अच्छी तरह पाठ पढ़ाकर विदा किया था। श्री चन्द्रशेखर के जीवन में ऐसी कई एक घटनाएँ आती हैं जब कि उन्होंने पुलिस को खूब छकाया। पुलिस उनके पीछे लगी रहती थी, किन्तु वह इतनी सफाई से निकल जाते

थे कि किसी को तनिक भी सन्देह तक न होता था। जो पुलिस का सिपाही उनके पीछे लगा होता था और उन्हें बन्दी बनाने की राह देखता था उसी से बातें करते-करते वह निकल जाते थे, कई बार उसी से कई पते की बात पूछते, किन्तु पुलिस वालों को पता तक न चल पाता कि यह कौन है। एक बार एक स्टेशन पर आजाद उतरने वाले थे। पुलिस को पता लग गया कि आज चन्द्रशेखर यहाँ आने वाले हैं। पुलिस ने सारा स्टेशन घेर लिया। इतने में एक भिखारी ने पुलिस वाले से आकर पूछा कि बाबू जी टिकट कहाँ बिकता है ? सिपाही ने भिखारी की ओर कोई ध्यान नहीं दिया और इशारा करके ही बता दिया कि अमुक स्थान पर मिलता है। पुलिस तो चन्द्र-शेखर की तलाश में थी उसे क्या पता था कि चन्द्रशेखर स्वयं भिखारी का वेश बनाकर उनकी आँखों में धूल डालकर चला गया।

श्री चन्द्रशेखर आजाद ने भारत को सशस्त्र क्रान्ति द्वारा स्वाधीन कराने का महान् प्रयत्न किया। वे रात-दिन इसी काम में लगे रहे। सरदार भगतसिंह ने एक बार उनसे कहा था कि आजाद ! भारतमाता को तुम्हारे जैसे वीर और चतुर नेता की आवश्यकता है। यदि दो-चार लोग ऐसे और मिल जायें तो देश का कल्याण होने में देर न लगे। ऐसे ही वीरों का भारतमाता बलिदान चाहती है। इस पर उन्होंने कहा था कि मैं उस दिन को बड़ा भाग्यवान समझूँगा जिस दिन राष्ट्र के लिये काम आऊँगा। भारत में उन दिनों विदेशी राज्य का जुआ उतारने के लिये जितने भी प्रयत्न हुए उनमें श्री चन्द्र-

शेखर आजाद का प्रमुख हाथ रहा। वह क्रान्तिकारी कार्यों में सदा आगे रहते थे। उनका शरीर बलिष्ठ था तथा उनका लगाया गया निशाना कभी भी नहीं चूकता था। आजाद जनता का पैसा धरोहर मानते थे और केवल प्रमुख कार्यों पर ही उसे व्यय करते थे। अपने ऊपर उन्होंने दल का पाँच पैसा भी कभी व्यय नहीं किया। वे प्राय: तीसरे दर्जे में यात्रा किया करते थे। एक बार जब दल के किसी सदस्य ने कहा कि सुरक्षा के लिये वे प्रथम या द्वितीय दर्जे में यात्रा किया करें तो श्री आजाद ने उस साथी से कहा कि जनता विश्वास करती है कि आजाद पैसा बर्बाद नहीं करेगा। यदि हम दूसरे दर्जे में चलेंगे तो उसका विश्वास उठ जायगा।

श्री आजाद भावना-प्रवण व्यक्ति थे। भावना की उमंग में ही उन्होंने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध शस्त्र उठाया था। भावना की उमंगों में ही उन्होंने अपने वज्र-सम कठोर वक्ष से निरंकुश शासन के भाले को कुण्ठित करते रहे। काकोरी षड्यन्त्र में फाँसी पाने वाले श्री रामप्रसाद 'बिस्मिल' जो उस समय क्रान्तिकारी दल के नेता थे, ने जब अपने उत्तराधिकारी की आकाँक्षा की तो आप सहर्ष अपना नाम प्रस्तुत करते हुए इस बलिदान-पथ पर अग्रसर हुए। इस कार्य में उन्हें कई एक विपत्तियों का भी सामना करना पड़ा।

साइमन कमीशन का बहिष्कार करने के फलस्वरूप पंजाब-केसरी लाला लाजपत राय पर पुलिस ने बर्बरता पूर्ण लाठी का प्रहार किया जिससे लाला जी को चोट आई और वह इस संसार से बिदा हो गये। इस अपमान का बदला उन्होंने

असिस्टेंट पुलिस सुपरिन्टेंडेन्ट मिस्टर संडर्स की हत्या करके लिया। इसके बाद भी क्रान्तिकारी दल ने अपनी योजनानुसार कई कार्य किये किन्तु श्री आजाद जो चाहते थे वह पूरा न हो सका। दल के सदस्यों की संख्या कम होती जा रही थी। कई प्रमुख साथियों को ब्रिटिश सरकार ने फाँसी दे दी थी, एकाकी होकर भी श्री चन्द्रशेखर आजाद दल का संगठन करते रहे, किन्तु एक विश्वासघाती साथी ने उनसे विश्वासघात किया और २७ फरवरी १९३१ को अपने मान-मर्यादा की रक्षा करते हुए प्रयाग में स्वयं गोली मार अपने भौतिक शरीर का अन्त कर लिया। उन्होंने यह कई बार कहा था कि 'आजाद की कलाई में हथकड़ी लगाना असम्भव है। अब तो शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे, किन्तु जीवित रहते पुलिस आजाद को बन्दी नहीं बना सकती' और इस प्रतिज्ञा का उन्होंने पालन किया। वे अदम्य साहसी थे और अन्तिम समय तक साहस से ही कार्य लिया।
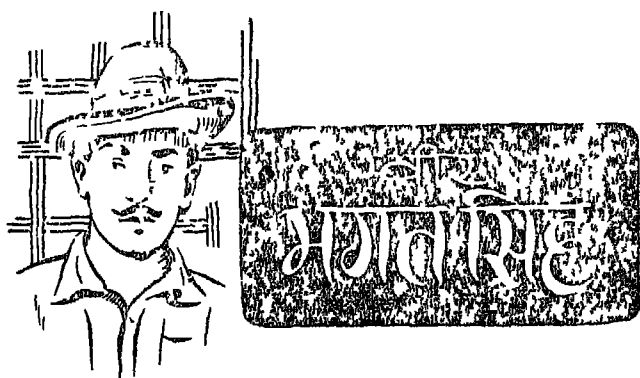
सरदार भगतसिंह का जीवन उन बलिदानी वीरों में अप्रतिम है, जिन्होंने हँसते-हँसते देश के लिये अपने प्राण दे दिये। सरदार भगतसिंह का जन्म अविभाजित पंजाब प्रांत के जिला लायलपुर में १९०७ में हुआ था। बाल्यकाल से ही उनका झुकाव सैनिकवाद की ओर था। जब यह बच्चे ही थे तब किसी ने एक दिन इनसे पूछा कि बड़े होकर तुम क्या करोगे? तब इन्होंने कहा था कि मैं तो बन्दूकें बोया करूंगा। इनका सारा परिवार देश की स्वतन्त्रता के लिये काम कर रहा था। इस नाते देश-प्रेम इन्हें पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिला। इनके बड़े चाचा अजीतसिंह लाला लाजपतराय के साथ जेल-जीवन बिता रहे थे तो इनके पिता गिरफ्तारी से बचने के लिये फरार थे और फरार होकर देश का कार्य कर रहे थे। जब यह पैदा हुए तो इनके पिता तथा इनके दोनों चाचा जेल से रिहा हुए, इसलिए इनकी दादी इन्हें भागाँ वाला कहती थी। आगे चलकर यही सरदार भगतसिंह के

नाम से विख्यात हुए।

सरदार भगतसिंह की प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के स्कूल में हुई। फिर ये डी० ए० वी० स्कूल में भर्ती हुए। अभी ये मैट्रिक में पढ़ ही रहे थे कि म० गांधी का असहयोग आन्दोलन छिड़ गया। सरदार भगतसिंह ने भी असहयोग किया और डी० ए० वी० स्कूल छोड़कर लाहौर के राष्ट्रिय कालेज में पढ़ने लगे। इसी कालेज में पढ़ते हुए सरदार भगतसिंह ने राजनीति का अध्ययन किया। सरदार भगतसिंह ने युवकों में संगठन करने के लिये नौजवान भारत सभा बनाई। जब परिवार वालों की ओर से इनके विवाह-सगाई की बात होने लगी तो यह घर से भागकर कानपुर पहुँचे और वहाँ के प्रतिष्ठित नेता स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी से सम्पर्क स्थापित करके दैनिक 'प्रताप' में बलवन्तसिंह के नाम से काम करने लगे। 'प्रताप' में काम करते हुए आपने सार्वजनिक जीवन में भी प्रवेश किया। जब गंगा में भीषण बाढ़ आई तो आपने श्रीबटुकेश्वर दत्त के साथ मिलकर पीड़ित व्यक्तियों की सेवा की। माता की बीमारी का समाचार पाकर सरदार भगतसिंह घर लौट आए।

घर आकर सरदार भगतसिंह ने एक डेरी खोली और काम काज करने लगे। डेरी का काम करते हुऐ भी इन्होंने देश-सेवा का कार्य नहीं छोड़ा, अपितु अवसर निकाल कर कानपुर आते और क्रन्तिकारी-दल के सगंठन का कार्य करते। सरदार भगतसिंह का परिचय उस समय के सभी क्रान्तिकारी नेताओं से हुआ और श्री चन्द्रशेखर आजाद, श्री राम-

प्रसाद 'विस्मल', श्री बटुकेश्वर दत्त आदि के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। उन दिनों देश में क्रान्तिकारी वीरों के कार्यों के कारण सरकार भयभीत रहा करती थी। सरदार भगतसिंह पर भी पुलिस की क्रूर दृष्टि थी। १६२६ में जब दशहरे के अवसर पर लाहौर में बम-विस्फोट हुआ तो श्री भगतसिंह पर मुकदमा चलाया गया, किन्तु वे इस मुकदमे में छूट गए।

साइमन कमीशन का देश-भर में बहिष्कार किया। पंजाब में भी इस कमीशन का बहिष्कार किया गया। जब साइमन कमीशन लाहौर पहुँचा तो लाला लाजपतराय के नेतृत्व में जनता ने कमीशन का बहिष्कार किया और 'साइमन लौट जाओ' का नारा आकाश में गूँज उठा। पुलिस ने जनता पर भीषण रूप से लाठियाँ बरसाईं। कुछ लाठियाँ लाला लाजपतराय के भी लगीं जिससे उन्हें गहरा आघात लगा। यह आघात शरीर से अधिक मानसिक था और वे १७ नवम्बर १६२८ को इस संसार को छोड़कर सदा के लिए स्वर्ग सिधार गये। लाला जी की मृत्यु से देश भर में क्षोभ की लहर व्याप्त हो गई और नौकरशाही के कृत्यों पर तीव्र रोष प्रकट होने लगा। क्रान्तिकारी दल ने लाला जी के निधन का बदला लेने का निश्चय किया और सरदार भगतसिंह के नेतृत्व में इस अपमान का बदला कई पुलिस अधिकारियों को मार कर लिया गया। इसके बाद दिल्ली असेम्बली में जब 'ट्रेड डिसप्यूट विल' पर मत-विभाजन हो रहा था तो भवन में बम का धड़ाका हुआ और सरदार भगतसिंह श्री बटुकेश्वर के साथ बन्दी बना लिये

गये। इन पर अभियोग चलाया गया और इन्हें आजन्म कारा-वास का दण्ड दिया गया। इसके बाद सरदार भगतसिंह पर 'लाहौर षड्यन्त्र' के आधीन मुकदमा चलाया गया और २३ मार्च १६३१ को ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने सेन्ट्रल जेल में फाँसी के झूले पर झुला दिया।

जब सरदार भगतसिंह को फाँसी की सजा दी जाने वाली थी, उस दिन जेल के चारों ओर पुलिस का कड़ा पहरा लगा दिया गया था। इनके परिवार वालों को इनसे मिलने की सूचना दी गई, किन्तु यह प्रतिबन्ध लगा दिया गया कि इनके माता-पिता तथा सगे भाई-बहिन के अतिरिक्त और कोई नहीं मिल सकता। फलस्वरूप परिवार वालों ने मिलना अस्वीकार कर दिया। सरकार तो यही चाहती थी की उसकी मुराद पूरी हो और उस आततायी सरकार ने फाँसी दिये जाने वाले सभी नियमों की अवहेलना करके सरदार भगतसिंह और उनके दो अन्य साथियों को फाँसी दे दी। जब जेल अधिकारियों ने सर-दार भगतसिंह और उनके दोनों साथियों को जेल की कोठरी से निकाला और इन्हें बलि-मंच की ओर ले जाने लगे तो इन तीनों वीरों ने 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का नारा लगाया और उत्तर में सभी बैरकों के कैदियों ने 'सरदार भगतसिंह जिन्दा-बाद' का नारा लगाकर उत्तर दिया। सरदार भगतसिंह को फाँसी देकर सरकार ने उनके शव को सतलुज नदी के किनारे पुलिस के ही पहरे में जला दिया और भस्म नदी में प्रवाहित कर दी। २४ मार्च को एक नोटिस द्वारा जनता को पता लगा कि सरदार भगतसिंह और उनके दोनों साथी शहीद हो गए।

लाहौर-स्थित 'फ्री प्रेस' के सम्वाददाता ने जो तार समाचार-पत्रों को दिया था वह उस समय की परिस्थिति का ज्ञान कराता है कि जनता में सरदार भगतसिंह के सम्बन्ध में किस प्रकार की जिज्ञासा विद्यमान थी। सम्वादाता ने लिखा था कि ऐसा प्रतीत होता है कि महात्मा गांधी ने सरदार भगतसिंह आदि की फाँसी रद्द करवाने के लिये कोई उपाय उठा नहीं रखा। वाइसराय पर इस सम्बन्ध में जोर भी डाला गया। महात्मा जी का अन्तिम प्रयास २३ मार्च को प्रातः किया गया था जब कि वे महामना मालवीय तथा अन्य कई नेताओं सहित लार्ड इरविन से मिलने गये थे। इस सम्बन्ध में सुना जाता है कि लार्ड इरविन ने कहा था कि वे फाँसी की सजा रद्द तो नहीं कर सकते हैं, पर फाँसी देना कुछ समय के लिये रोक सकते हैं ताकि कांग्रेस अधिवेशन सकुशल समाप्त हो जाय। कहा जाता है कि महात्मा गांधी ने इस प्रस्ताव से कोई लाभ नहीं देखा और उन्हें कहना पड़ा कि यदि फाँसी ही दी जानी है तो कांग्रेस अधिवेशन से पूर्व दे दी जाय ताकि देश को पता लग जाय कि वह कहाँ तक पहुँच पाया है। इस समाचार को अधिकारियों ने रोक लिया था और पत्रों में प्रकाशित न होने दिया।

इस सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि महात्मा गांधी का सन्देश सरदार भगतसिंह आदि के पास नौकरशाही ने पहुँचने भी न दिया था। 'फ्री प्रेस' ने यह भी सूचना दी थी कि लार्ड इरविन स्वयं फाँसी दिये जाने के पक्ष में नहीं थे किन्तु पंजाब सरकार के लगभग सभी उच्च अधिकारियों एवं

अंग्रेज अफसरों ने उन्हें धमकी दी थी कि यदि फाँसी की सजा रद्द की गई तो वे सब-के-सब अपने पदों से त्यागपत्र दे देंगे।

इन्हीं दिनों कांग्रेस का अधिवेशन कराची में होने जा रहा था। उसमें सम्मिलित होने के लिये देश-भर के नेता कराची जा रहे थे। जब नेताओं को सरदार भगतसिंह को फाँसी दिये जाने का समाचार मिला तो बहुतों की आँखों में आँसू आ गये।

सरदार भगतसिंह ने अपने छोटे भाई कुलवन्तसिंह को जो पत्र लिखा था उससे उनकी निर्भीकता का पता चलता है कि वे देश के लिए प्राण न्योछावर करते समय कितने प्रसन्न-चित्त थे। उन्होंने देश के नाम भी अपना यह अन्तिम सन्देश दिया था कि :—

"देश की स्वाधीनता के लिए अभी और बलिदान की आवश्यकता है।"

सरदार भगतसिंह के सम्बन्ध में उनकी माता श्रीमती विद्यावती, जिनकी आयु इस समय ७२ वर्ष की है, से बहुत कुछ जानकारी मिली। जब मैं उन्हें अम्बाला में मिला था। उन्होंने भगतसिंह के सम्बन्ध में बताया कि वह बचपन से ही देश की स्वाधीनता के लिए चिन्तित रहा करते थे और जब भी अवसर मिलता तो घर से चले जाते। उसने कई नाम रखे थे और देश की आजादी के लिए उसे घर की चिन्ता न थी। जिस दिन लाला लाजपतराय की लाठियों से मृत्यु हुई तब से उनके हृदय में लाला जी का बदला लेने की भावना उग्र हो गई और इसके लिये वे देश के कोने-कोने में घूमते रहे। जब मैंने उनसे कहा कि आप सरदार भगतसिंह की स्मृति में क्या चाहती हैं, तब उन्होंने बताया कि उनके नाम

पर गाँव में पुस्तकालय तथा स्कूल खोले जायँ और उनकी वस्तुओं का प्रदर्शन-कक्ष भी हो। इस काम के लिये गाँव वाले सहर्ष भूमि एवं अन्य सहायता देने के लिये तैयार हैं।

सरदार भगतसिंह के सम्बन्ध में आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने एक अवसर पर कहा था कि 'चाँद' के अभूतपूर्व फाँसी अंक में भगतसिंह ने विभिन्न नामों से क्रान्तिकारियों के सम्बन्ध में ७० से अधिक लेख लिखे थे और उन्हें चाँद के प्रबन्ध-सम्पादक स्वर्गीय रामकरणसिंह सहगल से ७०० रुपये पुरस्कार मिला था। सुना जाता है कि उस समय से उन्होंने हथियार खरीदे थे। दिल्ली से निकलने वाले 'महारथी' नामक एक मासिक पत्र के कार्यालय में सरदार भगतसिंह के लेख तथा पत्र आदि पढ़ने का मुझे अवसर मिला है। उसे देखकर यह सहज ही में कहा जा सकता है कि वे एक वीर के अतिरिक्त सुलेखक और सुसम्पादक भी थे। अपने पत्रों में वे सम्पादकों से अनुरोध किया करते थे कि जो निर्धन लेखक हैं उनकी आर्थिक सहायता की जाय।

सरदार भगतसिंह असेम्बली में बम फेंकने से पहले कई मास तक दिल्ली में रहे। उन्होंने अपना नाम बदल कर श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति के सम्पादकत्व में निकलने वाले दैनिक 'अर्जुन' सम्पादकीय विभाग में कार्य किया था। जब बम फेंकने के मामले में सरदार भगतसिंह पकड़े गये और 'अर्जुन' के सम्पादकीय विभाग के साथियों ने उन्हें देखा तब उन्हें पता लगा कि कुछ दिन पूर्व वे उनके साथ रहकर कार्य किया करते थे। वे लोग आश्चर्यचकित रह गए और उन्हें तब पता लगा कि वे कई बार कार्यालय में अनुपस्थित क्यों रहा करते थे।

★

महान् महिलाएँ

★ राष्ट्र-माता कस्तूर बा

★ भारत-कोकिला सरोजिनी नायडू

★ श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित

★ तपस्विनी कमला नेहरू

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की जीवन-सहचरी माता कस्तूरबा इस संसार में लगभग ७४ वर्ष की आयु में २२ फरवरी १९४३ को परमधाम चली गईं। माता कस्तूरबा कितनी भाग्यवान थीं कि उन्होंने अपनी अन्तिम साँस भी बापू की गोद में छोड़ी। बापू ने बा के निधन पर दुःखी हृदय से अपने नाती कनु से उन्हीं दिनों कहा था, कि "कौन ऐसी स्त्री होगी जो इस तरह अपनी अन्तिम साँस अपने पति की गोद में लेटकर छोड़े।" माता कस्तूरबा १९४२ के अगस्त-आन्दोलन में गांधी जी के बाद गिरफ्तार कर ली गईं थीं। जिस दिन गांधी जी गिरफ्तार हुए उसी दिन कस्तूरबा बीमार हो गई और जेल में वे बड़ी कृश हो गईं थीं। जब बाद में माता कस्तूरबा को आगा खाँ के महल में पहुँचाया गया, जहाँ गांधी जी नज़र-बन्द थे, तो वहाँ पहुँचते ही कस्तूरबा की बीमारी दूर हो गई। माता कस्तूरबा का जन्म पोरबन्दर में हुआ था इनके पिता वैष्णव धर्म के उपासक थे। इसलिए उनके विचारों का कस्तूरबा के जीवन पर भारी प्रभाव पड़ा। जब यह १३ वर्ष की आयु की थीं तब इनका विवाह गाँधी जी के साथ हो गया।

उन दिनों बाल-विवाह का प्रचलन था, अपने विवाह के समय से लेकर अन्तिम समय तक वे एक आदर्श पत्नी के रूप में महात्मा गाँधी की सेवा करती रहीं।

कस्तूरबा का जीवन भी सेवा का आदर्श था। राष्ट्र-सेवा, अतिथि-सत्कार, गरीबों के प्रति दया और अपने पति की सेवा आदि ऐसी बातें उनके जीवन से सीखी जा सकती हैं। माता कस्तूरबा के जीवन की एक यह भी विशेषता थी कि गांधी जी के विभिन्न आन्दोलनों में उनका साथ देने में उन्हें जो कठिनाई आई "बा" ने कभी उनकी शिकायत नहीं की।

गांधी जी जब विलायत से लौटकर जब दक्षिणी अफ्रीका गये, माता कस्तूरबा वहाँ भी उनके साथ रहीं। दक्षिणी अफ्रीका में गांधी जी को जिन संकटों का सामना करना पड़ा उनमें भी 'बा' पूरी तरह शामिल रहीं। बा एक धनिक परिवार की बेटी थीं, उनमें उनका बाल्यकाल सुखमय वीता था, पर उस सुख को 'बा' ने अपने पतिभक्ति के मार्ग में बाधक नहीं वनने दिया, गांधी जी ने अपने देशवासियों के लिए नागरिक अधिकार दिलाने के लिए जो आन्दोलन दक्षिणी अफ्रीका में चलाया था उस आन्दोलन में माता कस्तूरबा ने भी एक वीर नारी की तरह सत्याग्रह में भाग लिया।

कस्तूरबा के सम्बन्ध में गांधी जी को भय था कि कहीं यह जेल के कष्टों से घबराकर क्षमा-याचना करके जेल से मुक्ति न पा ले। जब सत्याग्रह करके जेल जाने की आज्ञा 'बा' ने बापू से माँगी तब उन्होंने कहा कि "कहीं तुम जेल के कष्ट से भयभीत होकर क्षमा तो न माँग लोगी।"

माता कस्तूरबा ने बापू को विश्वास दिलाया, "जो कष्ट आप सह सकते हैं वे कष्ट सहन करने का मुझे भी प्रयत्न करना चाहिए। यदि मैं सत्याग्रही बनकर और कष्ट न सहकर वापस आ जाऊँ तब मुझे अपने घर में स्थान न दें।"

बा के इस दृढ़ निश्चय को सुनकर गांधी जी ने प्रसन्नता-पूर्वक सत्याग्रह में भाग लेने की आज्ञा प्रदान की। माता कस्तूरबा सत्याग्रह-आंदोलन में महिला-सत्याग्रहियों का नेतृत्व करती हुईं जेल गईं। जेल में 'बा' ने बहुत-कुछ सीखा। यहाँ रहकर उन्होंने जनसेवा का व्रत अपनाया। एक-दूसरे के प्रति हीनभाव की भावना का अन्त करने की प्रेरणा 'बा' को जेल जाने पर ही मिली।

इस प्रकार लगभग ६२ वर्ष तक 'बा' बापू के हर काम में उनका नेतृत्व स्वीकार करके उनका अनुसरण करती रहीं।

१९४२ में ९ अगस्त को जिस दिन गांधी जी और कांग्रेस कार्य-समिति के सदस्य बम्बई में गिरफ्तार कर लिये गये, तब चौपाटी की एक नागरिक सभा में माता कस्तूरबा बापू तथा राष्ट्र के अन्य नेताओं का सन्देश देना चाहती थीं, पर जिस समय वे सभास्थल की ओर जा रही थीं तब 'बा' को मार्ग ही में पुलिस ने नजरबंद करके जेल भेज दिया। जेल में बीमार होने के कारण 'बा' गांधी जी के पास पूना में बीदर रोड पर स्थित आगा खाँ के महल में पहुँचीं तब गांधी जी की भौं तन गईं। उन्होंने सोचा कि 'बा' ने सरकार से मेरे पास आने की सुविधा माँगी होगी जिसके कारण 'बा' को यहाँ भेजा गया है। 'बा' को देखते ही बापू बोले, "तूने यहाँ आने की माँग की

थी या वे ही तुझे यहाँ ले आये ।" यह कहकर गांधी जी के चेहरे पर कठोर रेखाएँ खिच गईं । 'बा' के साथ आने वाली एक अन्य महिला जेल-यात्री ने उत्तर दिया कि पकड़ कर लाये हैं, तब गांधी जी की चिन्ता मिटी ।

'बा' गांधी जी के दक्षिण अफ्रीका के आंदोलन से लेकर चम्पारन के किसानों के आंदोलन और भारतीय स्वाधीनता के लिए लड़े गये सन् १९४२ के आन्दोलन तक गांधी जी के साथ रहीं और वे उन देश-भक्त महिलाओं में प्रमुख रहीं जिनका अन्त अंग्रेजों की जेल में भारतीय स्वाधीनता के लड़ते-लड़ते हुआ । एक प्रकार से वह गौरव बापू भी नहीं पा सके ।

माता कस्तूरबा के जीवन में कितना विचित्र संयोग रहा और कितना बड़ा सौभाग्य उनको मिला कि अन्तिम क्रिया में उनके पति (गांधी जी) एकटक उनकी अन्तिम लीला को खड़े होकर श्मशान भूमि में देखते रहे । जब उनसे कहा गया कि आप विश्राम करिए तब बापू ने कहा था कि "जिसके साथ ६२ वर्ष तक रहा उसका आज इतना भी साथ न दूँ ।"

माता कस्तूरबा गांधी जी के उपवास-काल में रात-दिन जागकर सेवा किया करती थीं ; पर स्वयं बीमार होने पर गांधी जी से अपनी सेवा नहीं कराना चाहती थीं । जब बा आगा खाँ के किले में नजरबन्द थीं और बीमार हो गईं तब गांधी जी ने चाहा कि वह 'बा' की मालिश आदि कर दें तब 'बा' ने यह स्वीकार नहीं किया । दक्षिणी अफ्रीका में बा जब अत्यन्त बीमार थीं, 'बा' की खूब सेवा की थी ।

वह अपने विचारों में दृढ़ थीं। उन्होंने दक्षिणी अफ्रीका में

अपने जीवन की रक्षा के लिए माँस का शोरवा तक नहीं लिया। 'बा' ने साहस से कहा कि मैं बिना शोरवा लिये ही जीवन धारण कर सकूँगी। 'बा' के अडिग विश्वास के प्रति श्रद्धा रखते हुए बापू जी अस्पताल से घर ले आये। घर जाकर 'बा' ठीक हो गईं। 'बा' यद्यपि बहुत पढ़ी-लिखी नहीं थीं, पर वे गांधी जी के सम्पर्क के कारण उनकी सेवा करते-करते राजनीति के गूढ़ विचार-तत्वों तक को भली प्रकार समझती थीं और विशेष अवसरों पर उसकी चर्चा भी करती थीं।

गांधी जी के काम से घर-घर जाकर महिलाओं को स्वच्छ रहने और स्वतन्त्र होने की प्रेरणा देने में उनका विशेष योग रहा। दक्षिणी अफ्रीका से लौटने पर गाँधी जी के अहमदाबाद आदि स्थानों पर बनाये गये आश्रमों की पूरी देख-भाल 'बा' की जिम्मेदारी पर थी। 'बा' महिलाओं को शक्तिशाली बनने की प्रेरणा देती थीं।

'बा' बहुत बार स्वयं या अन्य व्यक्तियों से पढ़ा-सुना करती थीं। धार्मिक प्रवृति की ओर भी उनका पूरा लगाव था। जीवन-भर वे एक सच्ची वैष्णव रहीं।

जिन दिनों 'बा' आगा खाँ के महल में नजरबन्द रहीं, तब प्राय: बीमार रहा करती थीं किन्तु फरवरी १९४३ के प्रारम्भ से ही उनकी बीमारी बढ़ चली थी। गाँधी जी ने बहुत उपचार किये, पर सफलता नहीं मिल सकी और वे २२ फरवरी १९४३ को सबको छोड़कर स्वयं सिधार गईं।

मरने से पूर्व कई घण्टे तक बा के पास बापू बैठे रहे। वे सैर करने जा रहे, थे पर जब 'बा' ने न जाने का आग्रह किया

तब वहीं बैठ गए । कई घन्टे तक 'बा' बापू की गोद में पड़ी रहीं । उस समय के दृश्य को देखकर डा० गिल्डर ने कहा था कि "चित्र लेने लायक दृश्य है' । बा का कुछ स्वभाव क्रोधी था बीमारी के कारण वे चिड़चिड़ी हो गई थीं, तब वे गांधी जी से अप्रसन्न हो गईं । किन्तु जब वे अपना अन्तिम साँस छोड़ रहीं थीं तब बड़ी वेदना के साथ रोकर उन्होंने बापू को पुकारा । बापू सैर के लिए तैयार थे । बापू से बा के कमरे में जाने के लिए कहा गया और बापू की गोद में ही बा ने कुछ देर बाद अपनी अन्तिम लीला समाप्त कर दी ।

'बा' क्या थीं, कौन थीं—आगे आने वाला युग यह सब न सोच कर यही कहेगा कि 'बा' एक ऐसी नारी थी जो देश की आज़ादी के लिए अपना जीवन बलिदान कर गई । आगा खाँ के महल में बाहर बना उनका समाधि-मन्दिर भले ही राज-घाट अथवा ताजमहल के समान सुन्दर न हो, किन्तु वहाँ जाने पर जो शान्ति मिलती है वह अवर्णनीय है । इन पंक्तियों के विनीत लेखक का अपना अनुभव तो इसी प्रकार का है ।

☆

भारत-कोकिला स्वर्गीया सरोजिनी नायडू भारत की उन वीर महिलाओं में से हैं जिन्होंने देश की स्वाधीनता के लिए अपने-आपको न्यौछावर कर दिया। स्वदेश-प्रेम की भावना से प्रेरित होकर श्रीमती सरोजिनी नायडू राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के सम्पर्क में आई, और अपने को गांधी जी के पीछे देश-प्रेम में पागल बना दिया। उन्होने एक बार स्वयं कहा था कि "महात्मा गांधी जी कन्हैया है और मैं उनकी बाँसुरी हूँ।" श्रीमती नायडू ने अपने इस कथन को अपने जीवन में चरितार्थ करके दिखा दिया। वे १९२० से लेकर अन्तिम समय तक असहयोग तथा सत्याग्रह का काम निष्ठापूर्वक करती रहीं, और कांग्रेस के एक स्वयंसेवक से लेकर उच्च पद पर काम करते हुए अपनी योग्यता तथा प्रतिभा से देश की स्वाधीनता के लिए काम किया। श्रीमती नायडू ने देश की स्वाधीनता के लिए अनर्थक कार्य किया। उनके कार्यों से भारतीय नारी का गौरव बढ़ा है।

श्रीमती सरोजिनी नायडू का जन्म १३ फरवरी १८७९ में हैदराबाद दक्षिण में हुआ था। आपके पिता डाक्टर

अघोरनाथ चट्टोपाध्याय बड़े शिक्षा-प्रेमी थे। हैदराबाद में निजाम कालेज की स्थापना उन्होंने ही की थी और उसके विकास में उनका प्रमुख हाथ रहा। वे विज्ञान के प्रकांड पंडित थे। उनकी आकांक्षा अपनी पुत्री को विज्ञान की उच्चतम शिक्षा दिलाने की थी, किन्तु प्रकृति को कुछ और ही स्वीकार था। फलस्वरूप ११ वर्ष की अवस्था में जब वे बीजगणित का प्रश्न हल करने में लीन थीं तब कवित्व-शक्ति ने विजय प्राप्त की। वह गणित का प्रश्न तो हल न हुआ, किन्तु कागज पर कविता उतर आई। बस यहीं से आपका झुकाव कविता की ओर हुआ। १३ वर्ष की आयु में आपने "लेडी आफ दि लेक" नामक १३०० पंक्तियों की एक कविता लिखी। इन्हीं दिनों आपने एक नाटक भी लिखा। यदि यह कह दिया जाय कि श्रीमती सरोजिनी नायडू कविता में बोलतीं, कविता में लिखतीं और कविता में ही रहती थीं तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

श्रीमती सरोजिनी नायडू ने मद्रास विश्वविद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की और उच्च शिक्षा के लिए इंगलैंड गईं जहाँ किंग कालेज में आपने शिक्षा ग्रहण की। कुशाग्र-बुद्धि श्रीमती नायडू ने वहाँ रहकर शिक्षा के साथ-साथ सामाजिक जीवन में भी भाग लिया। श्रीमती सरोजिनी नायडू ने पाश्चात्य साहित्य का अच्छी तरह अध्ययन किया। जब आप १८९८ में भारत आईं तो यहाँ आपका डा० गोविन्द राजुलू नायडू के साथ विवाह हुआ। यद्यपि श्रीमती सरोजिनी बंगाली परिवार से सम्बन्ध रखती थीं किन्तु आपने जाति-बिरादरी तथा प्रान्त की संकीर्णता को छोड़ कर अपना जीवन-

साथी चुनने में एक महान् क्रांति की। यही कारण है कि आपका गृहस्थ-जीवन सुखमय रहा। आपकी सन्तान भी योग्य है और कई उच्च पद पर रह कर देश की सेवा कर रहीं हैं। आपकी बड़ी सुपुत्री सुश्री पद्मा जी पश्चिमी बंगाल कीगवर्नर हैं।

सरोजिनी देवो में काव्य-प्रतिभा ईश्वर-प्रदत्त थी। उनकी कविता में स्वदेश-भक्ति की भावना भरी होती थी। यदि वे राजनीति में प्रवेश न भी करती तो भी सारा संसार उन्हें कवियित्री के नाम से स्मरण करता और वे अपने काव्यों के कारण विश्व में अपना स्थान बनाने में पूर्ण समर्थ होतीं। आपके कविता-संग्रह 'दि गोल्डन थ्रै श होल्ड' और 'दि वर्ल्ड आफ टाइम' से आपकी ख्याति सारे यूरोप में हो गई। उस समय भारत पराधीन था और स्वाधीनता की बात करना तथा भारत की बड़ाई करना इंग्लैंड-निवासियों को अच्छा नहीं लगता था, यही कारण था कि सरोजिनी देवी सबसे पहले भारत को स्वाधीन बनाने के काम में जुटीं। भारत आकर वे यहाँ के राजनीतिक वातावरण में आईं और सक्रिय होकर देश का काम करने लगीं। स्वाभिमान, स्वदेशाभिमान एवं राष्ट्रीयता की भावना का वातावरण मिलते ही सरोजिनी देवी की प्रतिभा एवं व्यक्तित्व निखर उठा।

श्रीमती सरोजिनी नायडू १९१५ में प्रभावशाली वक्ता तथा एक कर्मठ स्वयंसेवक के नाते सार्वजनिक जीवन में आईं। १९१६ में लखनऊ में हुए कांग्रेस-महासमिति के अधिवेशन में आप सम्मिलित हुईं और स्वायत्त शासन के ऊपर प्रभावशाली भाषण दिया। उस भाषण का बड़ा प्रभाव पड़ा और देश के

उच्च-से-उच्च नेता आपसे प्रभावित हुए, तब से लेकर जीवन-पर्यन्त आप कांग्रेस अधिवेशनों में भाग लेती रहीं। राष्ट्रपिता गाँधी जी आपके विचारों का बड़ा सम्मान करते थे। कांग्रेस में रहते हुए आपने समस्त देश का दौरा किया। आपके भाषणों का जनता, विशेष रूप से विद्यार्थियों तथा स्त्रियों पर अधिक प्रभाव पड़ा। आपने भारत की ओर से जिनेवा में होने वाली अन्तरर्राष्ट्रीय स्त्री-मताधिकार-परिषद् में भी भाग लिया था और वहाँ भारतीय महिलाओं का प्रतिनिधित्व करके अपनी प्रतिभा द्वारा सबको चकित कर दिया था। आपने दक्षिणी अफ्रीका का भी दौरा किया था।

श्रीमती सरोजिनी नायडू ने कांग्रेस की अध्यक्षता उस समय स्वीकार की जब देश हिन्दू-मुस्लिम दंगों से झुलस रहा था। चारों ओर साम्प्रदायिकता का तांडव-नृत्य हो रहा था। ऐसी विकट स्थित में आपने काँग्रेस की अध्यक्षता सँभाली। अध्यक्षा बनने पर आपने जो भाषण दिया था वह आपकी विद्वत्ता और देश के प्रति कर्तव्यनिष्ठा का परिचायक है। आपने कहा था कि "भारत माता की आज्ञा-कारिणी पुत्री की हैसियत से मेरा काम यह होगा कि अपनी माता का घर ठीक करूँ और इन शोचनीय झगड़ों का निबटारा करूँ"। इसके साथ ही आपने यह भी कहा था कि "स्वतंत्रता के युद्ध में डरकर पीठ दिखाना अक्षम्य अपराध और निराशाजनक पाप है।" श्रीमती सरोजिनी देवी ने कभी निराशा तथा थकान का अनुभव नहीं किया। उन्होंने गाँधी जी द्वारा चलाए सभी आन्दो-लनों में बढ़-चढ़ कर भाग लिया। यहाँ तक कि कई बार

साहस एवं निडरता में आपने पुरुषों को भी पछाड़ दिया। धरासना और बडाला के सत्याग्रह का संचालन भी आपने किया। इसी प्रसंग में आपको जेल का जीवन बिताना पड़ा और यरवदा जेल में रहते हुए सरकार और गांधी जी में हुई सन्धि की चर्चा में आपने भी भाग लिया। १९३१ में गोलमेज कांफ्रेंस में भी आप महात्मा गांधी तथा महामना मालवीय जी के साथ सम्मिलित हुईं और भारतीय महिलाओं का प्रतिनिधित्व किया। 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में भी आपने भाग लिया और जेल गईं। भारत के स्वाधीन होने पर सरोजिनी नायडू उत्तर प्रदेश की राज्यपाल नियुक्त हुईं और देश के निर्माण में अपना योग देने लगीं। निरंतर कार्य करने के कारण आपका स्वास्थ्य ठीक न रहा और २ मार्च १९४९ को इस लोक से विदा हो गईं। श्रीमती नायडू ने जो कार्य किया है वह आज भी नवीन है। देश को स्वाधीन कराने से लेकर निर्माण तक के कार्यों में उनका भाग रहा। उन्होंने देश-भक्ति और देश-सेवा का जो आदर्श हमारे सामने प्रस्तुत किया है वह आशा एवं उत्साह का संचार करने वाला है।

श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित देश-गौरव पं० जवाहर-लाल नेहरू की बहन हैं। ये देश की उन महिलाओं में से एक हैं जो अपने देश तथा संसार की नारियों के अधिकारों की रक्षा के लिये लड़ाई लड़ने में सदा प्रमुख रहीं हैं। वे संयुक्त राष्ट्र-संघ की अध्यक्षा रह चुकी हैं। यह गौरव पहली बार ही सारे संसार में एक महिला को मिला है। यूरोप के अन्य समृद्ध देशों के मुकाबले में भी श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित पहिली महिला थीं जिन्हें विदेशों में भारतीय राजदूत बना कर भेजा गया।

श्रीमती पंडित अब तक सोवियत रूस : अमरीका और इंग्लैंड में भारतीय राजदूत का कुशलतापूर्वक काम कर चुकी हैं। आजकल भी आप इग्लैंड में भारतीय राजदूत हैं। श्रीमती पंडित उन देश-भक्त महिलाओं में से एक हैं जिन्हें अपने भाई पं० जवाहरलाल नेहरू के समान बहुत बार देश की आजादी की लड़ाई में भाग लेने के कारण जेल जाना पड़ा। जेल से

बाहर रहकर भी आपने विदेशी वस्त्रों की बिक्री के विरुद्ध धरना आदि दिया था। श्रीमती पंडित को सबसे पहले १९३७ में बनाये गये कांग्रेसी मंत्रिमंडल में मंत्री बनाया गया था। जितने समय तक वे उसमें शामिल रहीं उन्होंने अपने पद का सफलतापूर्वक कार्य किया।

श्रीमती पंडित का जन्म प्रयाग में १८ अगस्त १९०० में हुआ। परिवार में आप पर माता-पिता के अतिरिक्त अन्य पारिवारिक जनों का विशेष स्नेह रहा। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। इनके पिता स्व० पं० मोतीलाल नेहरू सदैव इनके स्वास्थ्य का पूरा ध्यान रखते थे। इस दृष्टि से इन्हें भी जवाहरलाल जी की तरह व्यायायाम करने तथा घुड़सवारी का शौक रहा। स्वास्थ्य-रक्षा के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहने के कारण आपका स्वास्थ्य आज तक अच्छा बना हुआ है। माता-पिता के संरक्षण में रहकर श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित की शिक्षा के लिये अंग्रेजी शिक्षिका के रूप में मिस ह्यूर रखी गईं।

शिक्षा आदि प्राप्त करके जब आप २० वर्ष की हुईं तब आपका विवाह सुप्रसिद्ध विद्वान् रणजीत सीताराम पंडित से हुआ। विवाह के बाद श्री पंडित अपनी पत्नी श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित सहित स्वाधीनता आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने लगे।

श्रीमती पंडित ने नारियों को जगाने का काम किया और इनके पति स्व० पंडित नें कांग्रेस के संगठन को मजबूत बनानें की दिशा में सराहनीय यत्न किया। श्रीमती पंडित

पहले असहयोग आन्दोलन में जेल गईं और उसके बाद व्यक्तिगत सत्याग्रह में भी नैनी जेल में रहीं। जब 'भारत-छोड़ो' आन्दोलन १९४२ में छिड़ा तब सरकार ने उन सबको लोहे के सीकचों में बन्द कर दिया जिससे उन्हें जरा भी यह आशा थी कि ये इस आन्दोलन को आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं, तब श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित को कैसे बाहर छोड़ा जा सकता था, उन्हें भी जेल में नजरबन्द कर दिया गया किन्तु स्वास्थ्य खराब होने के कारण इन्हें रिहा करना पड़ा। ये तो रिहा हो गईं, पर इनके पति स्व० रणजीत सीताराम पंडित जेल में बीमार होने के कारण जीवित नहीं रहे। उनके निधन से श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित को भारी ठेस पहुँची। किन्तु अपने को संयत रखकर इन्होंने उसे सहन किया और बराबर राष्ट्र की सेवा में लगी रहीं। १९४४ में जब आप सॉनफ्रान्सिसको में होने वाली संयुक्त राष्ट्र-संघ की बैठक में भारतीय प्रतिनिधि बन कर गईं उस समय यूरोप के कई देश भारत के प्रति बड़े विक्षुब्ध थे और वे भारत को अपमानित करने के लिये निरन्तर प्रयत्न करते रहते थे। उन दिनों उन्होंने 'जैसे को तैसा' नीति न अपनाकर युक्ति-संगत उपायों से भारतीय दृष्टिकोण प्रस्तुत किया और उसका यह प्रभाव हुआ कि जितने विरोधी सदस्य थे, वे भी पहले की अपेक्षा भारत के प्रति अधिक विनम्र बने। इसी प्रकार १९४६ में संयुक्त राष्ट्र-संघ की बैठक में अफ्रीकी गोरों द्वारा भारतीयों पर अत्याचार का प्रश्न लेकर नेतृत्व करने गई थीं तब आपके विचारों को सुनकर सभी सदस्य दंग रह गये थे। उन्होंने

इस अवसर पर यह भी कहा कि इस प्रकार के काले कानून केवल एशिया तक ही सीमित हैं। इस बात ने उन लोगों का सिर नीचा कर दिया जो अपने आतंक द्वारा भारतीय अथवा अन्य वर्गों के लोगों को सता रहे थे।

श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित ने अपने इस कार्य से सारे संसार में धूम मचा दी। उनका प्रयत्न सफल हुआ और गोरों की दासता से भारतीय एवं एशियायी देशों के करोड़ों व्यक्ति दासता के बंधन से मुक्त हुए।

श्रीमती पंडित का विश्वास है कि बहुत से मामलों में 'ईंट का जवाब ईंट' नहीं होता। इस सम्बन्ध में श्रीमती पंडित ने लिखा है कि "जिन दिनों मेरे पति का स्वर्गवास हो गया था और मैं किसी पुत्र की माता न होने कारण पति की सम्पत्ति में अपना कोई विशिष्ट स्थान नहीं पा रही थी और उसके कारण पति-परिवार के सदस्यों के साथ मन-मुटाव चल रहा था तब मुझे लगा कि जिस स्वाधीनता के लिए मैंने पुरुषों के साथ कन्धा-से-कन्धा मिला कर काम किया, आज स्वतन्त्र हो जाने पर भी उसको मुझ पुत्रहीन विधवा और मेरी तीनों पुत्रियों को कोई स्थान नहीं था।। इस अपमान से मुझे बड़ा कष्ट हुआ और अपने परिवार के लोगों के प्रति भी क्रोध हुआ।

इन्हीं दिनों मुझे प्रशान्त सम्मेलन में भाग लेने जाना था। वहाँ जाने के पूर्व गांधी जी के पास आशीर्वाद लेने गई।

गांधी जी बोले, 'क्या तुमने अपने सम्बन्धियों से समझौता कर लिया है ?' मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने उत्तर दिया, 'मैंने किसी से झगड़ा नहीं किया लेकिन वे एक निकम्मे कानून की शरण लेकर झगड़ा कर रहे हैं। उसमें मैं समझौता नहीं कर सकती।'

गाँधी जी एक क्षण के लिए खिड़की से बाहर देखने लगे वह घूमे और मुस्कराकर बोले फिर 'जाकर उनसे विदा लो। शिष्टाचार का यह तकाजा है।' मैंने कहा कि नहीं, जो लोग मेरा नुकसान करना चाहते हैं उनसे मैं नहीं मिलूँगी। गांधी जी मुस्कराते रहे। उन्होंने कहा कि तुम्हारे सिवा तुम्हारा कोई नुकसान नहीं कर सकता। तुम्हारे हृदय में क्रोध भी है इसलिए तुम इस प्रकार सोचती हो।

गांधी जी के उपदेश से मैं बहुत बार देश और विदेश में अपना सम्मान स्थिर रख सकी। श्रीमती पंडित ने पिछले दिनों ब्रिटेन के विशिष्ट व्यक्तियों को भोज दिया था। उस भोज के लिए जो खाद्य-सम्बन्धी सूची दी गई थी उसके अनुसार वह तैयार नहीं हो सका था क्योंकि श्रीमती पंडित का रसोइया शक्ति से अधिक शराब पी गया था। पहले तो श्रीमती पंडित का पारा अन्तिम छोर पर पहुँच गया कि इस रसोइये को तत्काल नौकरी से हटा दिया जाय किन्तु फिर सँभल कर परिस्थितियों पर विचार किया और जो कुछ तैयार किया गया था वही भोजन आमंत्रित अभ्यागतों को परोस दिया गया। भोजन के परोसे जाने के अवसर पर श्रीमती

पंडित ने निमंत्रित व्यक्तियों पर अपनी स्थिति प्रकट कर दी। श्रीमती पंडित की बात सुनकर भोज में उपस्थित व्यक्तियों ने कहा कि जब आपका रसोइया शराब पीकर ऐसा भोजन बना सकता है तब होश-हवास रख कर बिना शराब पिये वह अमृत के समान स्वादु भोजन बनाता होगा।

श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित देश-विदेश मे सभी स्थानों पर जहाँ उनकी सेवा की आवश्यकता अनुभव की गई, वे वहाँ कष्ट सहकर भी सेवा करने से पीछे नहीं हटीं। राष्ट्रीय आन्दोलन के अतिरिक्त महिला जागरण की दिशा में भी उनका भगीरथ प्रयत्न रहा है।

भारतीय देशभक्त महिलाओं में स्व० श्रीमती कमला नेहरू का महत्वपूर्ण स्थान है। श्रीमती कमला नेहरू यद्यपि हमारे बीच में आज नहीं हैं, फिर भी उनकी याद बरबस देशवासियों को ताजा हो जाती है। जब प्रधानमन्त्री श्री नेहरू और उनकी सुपुत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी जनता के बीच में उपस्थित होते हैं, तब बहुत-से हृदयों में एक धुंधली-सी तसवीर स्मृति के रूप में ताजा हो जाया करती है और वह तसवीर वीरांगना कमला नेहरू की होती है, जो कुटिल काल ने हमसे २८ फरवरी १९३६ को छीन ली थीं।

श्रीमती कमला नेहरू का जन्म जयपुर से सम्बन्ध रखने वाले और दिल्ली में बसने वाले एक कश्मीरी परिवार में हुआ था और उनका विवाह भी एक ऐसे कश्मीरी घराने में हुआ जो आज सारे संसार में नेहरू-परिवार से प्रसिद्ध है और इस प्रसिद्धि का कारण इस परिवार के नर-रत्न पं० जवाहरलाल नेहरू हैं। जिस तरह से श्री जवाहरलाल नेहरू की प्रसिद्धि विश्व-भर में है और सभी देशों के निवासी

उन्हें आदर और सम्मान प्रदान करते हैं वह किसी से छिपी नहीं है। ऐसे विश्व-सम्मानित पुरुष की जीवन-सहचरी होने का श्रीमती कमला नेहरू को सौभाग्य मिला। श्रीमती कमला नेहरू सम्पन्न परिवार में जन्म लेने के बाद भी उदार-हृदया रहीं। उनके हृदय में सदैव देश और समाज के लिये स्नेह रहा। यद्यपि वे कोमल शरीर की थीं, किन्तु उन्होंने कभी भी उस कोमलता को नहीं अपनाया; अपितु देश-सेवा के निमित्त अपनी कोमलता को कठोरता में बदल लिया।

श्रीमती कमला नेहरू ने उन वीर महिलाओं की परम्परा को अपने जीवन में चरितार्थ किया और राजसी सुख-वैभव को तिलांजलि देकर एवं बड़े मूल्य वाले शृंगारिक वस्त्रों को जलाकर उनके स्थान पर खादी के वस्त्रों को अपने अंगों की शोभा बनाया। जिस खादी के द्वारा देश के लाखों गरीब मजदूर तथा अनाथ विधवाएँ पलती हैं, उसे जनता तक पहुँचाने में श्रीमती कमला नेहरू ने बड़ा काम किया। जिन दिनों देश में असहयोग आन्दोलन चल रहा था उन दिनों श्रीमती कमला नेहरू ने अपनी भूख और प्यास को भुलाकर असहयोग आन्दोलन का सराहनीय काम किया। उनके इस साहसपूर्ण कार्य पर देश-भर में सराहना की गई और बड़े-बड़े नेताओं ने उन्हें साहसी महिला के नाम से सम्बोधित किया। असहयोग-आन्दोलन के दिनों में कठिन परिश्रम करने के कारण उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया और ऐसा बिगड़ा कि फिर उसमें सुधार न हो सका। श्रीमती कमला नेहरू बीमार रहने लगीं; किन्तु बीमारी के दिनों में भी उनके हृदय में देश

के प्रति काम करने की भावना रहती थी। जब रोग ने उनके शरीर को जर्जरित कर दिया तब वे चिकित्सा के लिये विदेश ले जाई गईं और यह देश का बड़ा दुर्भाग्य था कि वह स्वस्थ होकर न लौट सकीं !

श्रीमती कमला नेहरू दिल्ली के जिस परिवार में पैदा हुई थीं उसमें पण्डित जवाहरमल कौल और श्रीमती राजमती कौल को इस वीरांगना के जन्म देने का सौभाग्य प्राप्त है। उन दिनों दिल्ली का वैभव नष्ट हो चुका था और दिल्ली पराधीनता के नियन्त्रण में सिसक रही थी। दिल्ली और देश के लोगों में इस पराधीनता से असन्तोष घर करता जा रहा था। ऐसे दिनों में जुलाई १८८९ में श्रीमती कमला नेहरू का जन्म हुआ था। कमला के जीवन पर उनकी माता श्रीमती राजमती का प्रभाव अधिक पड़ा था। बाल्यकाल में कमला जी स्त्री-शिक्षा का प्रचलन न होने पर भी शिक्षा से वंचित न रह सकीं। अपने शिक्षण-काल में उन्हें भारत के प्रसिद्ध नगरों को देखने का भी अवसर मिला। उनके बाल्यकाल से ही जीवन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे कठोर-से-कठोर काम करने से भी कभी न घबराती थीं।

दाम्पत्य जीवन में भी कमला नेहरू पूर्ण रूप से सफल सिद्ध हुईं। जो अपरिमित स्नेह उन्हें श्री जवाहरलाल नेहरू से मिला, वह एक महिला के लिये आदर्श है। श्रीमती कमला नेहरू ने भी अपने पति के प्रति आदर प्रकट किया और सदैव उनकी इच्छाओं का पालन किया। एक प्रकार से श्री नेहरू जी के लिये श्रीमती कमला जी ने अपने स्नेह के अद्भुत

साधन जुटाये, जिनसे श्री जवाहरलाल नेहरू सारे संसार में सम्मानित हुए।

कमला जी के जीवन में विवाह के एक वर्ष बाद श्रीमती इन्द्रा-जैसी सुपुत्री प्राप्त हुई जो आज अपने माता तथा पिता दोनों का अपने शिक्षा और सदाचरण से नाम उज्ज्वल कर रही हैं। श्रीमती कमला जी को तीन वर्ष के बाद एक पुत्र-रत्न भी प्राप्त हुआ, किन्तु वह अधिक दिन तक जीवित न रह सका और अपने माता-पिता को दुखी करके इस संसार से विदा हो गया। इस दुख से दुखी होकर एक बार श्रीमती कमला नेहरू के ससुर श्री मोतीलाल नेहरू ने कहा था कि इतने बड़े महल में कौन दीपक जलायेगा। श्री मोतीलाल नेहरू की बात कहाँ तक उचित है, इसकी चर्चा न करते हुऐ यह कहना उचित होगा कि कमला और श्री जवाहर के सारे देशवासी अंग हैं जिनके लिये श्रीमती कमला नेहरू ने अपना जीवन न्यौछावर कर दिया और श्री जवाहरलाल नेहरू पिछले ४० वर्ष से देश के लिये अपना सर्वस्व अर्पण किये हुए हैं, वे सब ही उस महल की ज्योति हैं।

श्रीमती कमला नेहरू बड़ी गम्भीर और सुशील स्वभाव की विदुषी महिला थीं। उन्होंने कभी स्वप्न में भी गर्व न किया था। स्त्री-स्वाधीनता के लिये उनका कहना था कि पराधीनता ने हमारे देश की स्त्रियों का जीवन नष्ट कर दिया है और उनकी अद्भुत शक्तियों को मिट्टी मे मिला दिया है। श्रीमती कमला नेहरू के आदर्श जीवन में श्री जवाहरलाल नेहरू का भी बड़ा हाथ रहा है। श्री जवाहरलाल कोरे

आदर्शवादी नहीं थे जो अपने लिये कुछ और बाहर के लिये कुछ और हों। इस प्रकार के विचार रखने वाले श्री जवाहरलाल नेहरू ने सभी वर्गों की स्वाधीनता का समर्थन किया और स्त्रियों की उन्नति के लिये उनके हृदय में सदैव सम्मानपूर्ण भावना रही। यही कारण है कि उन्होंने अपनी जीवन-सहचरी श्रीमती कमला नेहरू को भी वही स्वाधीनता प्रदान की जो वह दूसरी अन्य स्त्रियों के लिए चाहते थे। एक बार एक पुरुष ने श्रीमती कमला नेहरू से पूछा था कि आप स्त्रियों के लिये किस प्रकार की स्वाधीनता चाहती हैं। श्रीमती कमला नेहरू ने निर्भय होकर कहा था कि "स्त्रियों के लिये उसी प्रकार की स्वाधीनता की आवश्यकता है जिस प्रकार की स्वाधीनता पुरुष अपने लिये चाहते हैं।" उस व्यक्ति ने कमला जी से अपने मन्तव्य को अधिक स्पष्ट करने के लिये कहा। तब श्रीमती कमला जी ने कहा कि "स्वाधीनता ईश्वर-प्रदत्त शक्ति है और उस पर स्त्री-पुरुष दोनों का समान अधिकार है। किसे स्वाधीनता दी जाय और किसे न दी जाय इसका निर्णय करने वाला अपराधी है और सबसे बड़ा अपराधी वह है जो किसी को इस अधिकार का प्रयोग करने के लिये प्रतिबन्ध लगाता है।"

राष्ट्रीय स्वाधीनता-आन्दोलन में कमला जी प्रयाग की नगर कांग्रेस से लेकर आल इण्डिया कांग्रेस तक की कार्यकारिणी की सदस्या रहीं और जब विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार का आन्दोलन छिड़ा तब वह सबसे आगे बढ़कर धरना देने वालों में सम्मिलित हुईं। अनेक दुकानों पर आपने धरना देकर

विदेशी वस्त्र खरीदने वालों को स्वदेशी वस्त्र खरीदने की प्रेरणा दी।

कमला जी के देशभक्ति-सम्बन्धी कार्यों से विदेशी सरकार अपरिचित नहीं थी। वह बराबर उनकी गतिविधियों पर ध्यान रखती थी, फलस्वरूप उन्हें भी कई बार जेल जाना पड़ा और वास्तव में जेल-जीवन में ही श्रीमती कमला जी का स्वास्थ्य खराब हुआ। जिन दिनों श्री जवाहरलाल जी जेल में थे और देश का कोई भी नेता बाहर न था उन दिनों आन्दोलन का डिक्टेटर श्री कमला जी को ही चुना गया था और उन्होंने सफलतापूर्वक इसका नेतृत्व किया था। कमला नेहरू की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह पक्षपात-रहित होकर सभी वर्गों से स्नेह रखती थीं। उन्होंने इस सम्बन्ध में एक अवसर पर कहा था कि "इस देश में रहने वाले सदैव रहेंगे; चाहे देश पराधीन हो अथवा स्वाधीन। छोटे-छोटे मतभेद लेकर लड़ाई करना अच्छा नहीं अपितु इससे ऊपर उठकर देश की स्वाधीनता के लिये प्रयत्न करना चाहिये। जब तक हमारा देश पराधीन है तब तक विश्व में इसका कोई स्थान नहीं है इसलिये सब से पहले यह प्रयत्न होना चाहिये कि किसी प्रकार हमारा यह देश स्वाधीन हो सके और हमारे मस्तक से गुलामी का कलंक दूर हो सके।"

जब कमला जी अस्वस्थ होकर काम करने से लाचार हो गईं तब उन्हें देश में तथा विदेश में स्वास्थ्य-लाभ के लिये ले जाया गया किन्तु वे लाख प्रयत्न करने पर भी स्वस्थ न हुईं और उनका विदेश में ही देहावसान हो गया। उनके

निधन का समाचार सुनते ही देश-भर में शोक की लहर छा गई। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने इस अवसर पर कहा था कि "श्रीमती कमला नेहरू की मृत्यु से राष्ट्र की एक महान् क्षति हुई है। वह एक वीरांगना थी और देश का कार्य करते करते ही स्वर्ग चली गई।" राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन ने शोक प्रकट करते हुए कहा कि "हमने राष्ट्र का एक अनमोल रत्न खो दिया, जिसने राष्ट्र की अदम्य उत्साह और लगन से महान् सेवा की। श्रीमती कमला नेहरू ने देश के लिये जो कुछ किया वह अद्वितीय है और रहेगा।"